ा ी

[आगम-साहित्य के विशिष्ट पद्यों का हिन्दी काव्यानुवाद]

डॉ० हरिराम चार्य
प्रवाचक एव अध्यक्ष,
सस्कृत-विभाग
राजस्थान विश्वि लय, जयपुर

★

ह्री

राजस्थान प्राकृत-भारती-संस्थान, जयपुर
१९८०

□

प्रकाशक :

देवेन्द्रराज मेहता,

सचिव, प्राकृत-भारती सस्थान, जयपुर

□

प्रथमावृत्ति १०००

□

मूल्य ' दस रुपये

□

सन् १९८०, वि स २०३६, वीर नि सं २५०६.

□

प्राप्ति-स्थान .

राजस्थान प्राकृत-भारती-संस्थान,

गोलेछा हवेली, मोतीसिंह भोमियो का रास्ता,

जयपुर–३०२००३ (राज)

□

मुद्रक

पॉपुलर प्रिण्टर्स

नवाब साहब की हवेली, त्रिपोलिया बाजार,

जयपुर–३०२००२

का ीय

प्राकृत-भारती सस्थान के चतुर्थ प्रकाशन-पुष्प के रूप में आगमतीर्थ' पाठकों को समर्पित है। भगवान् महावीर द्वारा उद्बोधित जैन विचार-धारा एव दर्शन आगम-साहित्य के रूप में उपलब्ध है। इस साहित्य की कुछ विशिष्ट सूक्तिया हिन्दी काव्यानुवाद सहित आगमतीर्थ के रूप में प्रकाशित की जा रही है।

भगवान् महावीर के २५०० वें निर्वाण-वर्ष के अवसर पर आगम-साहित्य की सूक्तियों का सकलन 'समणसुत्त' के रूप में प्रकाशित हुआ था। इस ग्रन्थ का लाभ सूक्तियों के चयन में प्राकृत भारती-सस्थान ने लिया।

हिन्दी काव्यानुवाद राजस्थान विश्वविद्यालय के सस्कृत-विभाग के अध्यक्ष और हिन्दी के कवि डा० हरिराम आचार्य द्वारा किया गया है। इसके साथ ही डा० आचार्य ने जैन-दर्शन पर अपनी कुछ मुक्तक रचनाएँ भी इस पुस्तक में सम्मिलित की है। डा० आचार्य ने मूल अनुवाद एव मुक्तकों का वाचन स्वय कई बडी सभाओं में किया है। इसे सुनकर श्रोतागण भाव-विभोर हो जाते हैं। इनकी लोकप्रियता को देखते हुए इस सस्थान द्वारा पुस्तक के रूप मे इनके प्रकाशन का निर्णय लिया गया। वैसे भी जैन दर्शन को जन-साधारण की भाषा में प्रकाशित करने की परम्परा रही है और यह प्रकाशन उसी के अनुरूप है।

श्रद्धेय विचक्षणश्री जी महाराज ने, कैंसर जैसी विकट व्याधि से ग्रस्त होते हुए भी, इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखी है। महाराज साहब ने जैन दर्शन को अपने जीवन में उतार लिया है। एक प्रमुख

विद्वान् ने महाराज साहब की वर्तमान अवस्था के बारे में यह कहा था कि वे इस व्याधि में भी समाधि में हैं। ऐसी परम साध्वी श्री द्वारा आशीर्वचन रूप में लिखी प्रस्तावना से इस पुस्तक का महत्त्व और भी बढ जाता हैं। सस्थान इस कृपा के लिए महाराज साहब का चिर ऋणी रहेगा।

डा० हरिराम आचार्य ने इस काव्यमय अनुवाद कार्य में जो अथक प्रयास किया हैं उसके लिए सस्थान उनके प्रति आभारी हैं। आवरण पृष्ठ के लिए सस्थान श्री पारस भसाली के प्रति कृतज्ञ हैं। श्री महावीर गोयल, पॉपुलर प्रिन्टर्स ने इस पुस्तक के शीघ्र मुद्रण में विशेष रुचि दिखाई हैं उसके लिये वे साधुवाद के पात्र हैं।

सस्थान के सयुक्त-सचिव महोपाध्याय श्री विनयसागर का भी मैं अनुगृहीत हू, जिन्होंने पुस्तक के प्रकाशन-कार्य में अपना पूर्ण सहयोग प्रदान किया हैं।

१५ २ ८०

—देवेन्द्रराज मेहता
सचिव,
राजस्थान प्राकृत-भारती सस्थान
जयपुर

प्रस्तावना

श्रमण भगवान् महावीर ने ` बारह वर्ष तक तपस्या और उग्र साधना कर जो ज्ञान और अनुभव प्राप्त किया उसे उन्होंने जन-कल्याणार्थ सबमें वितरित ि । उनका वह उपदेश-नवनीत गणधरों द्वारा ग्रथित एव सकलित होकर आगमों के रूप में आज हमारे सामने सुरक्षित है। यह आगम-साहित्य गहन, विविध और व्यापक है। इसमें एक ओर जीव-जगत् का स्वरूप निरूपित है तो दूसरी ओर आत्मा के परमात्मा बनने की साधना-पद्धति एव आचार-प्रणालिका का विवेचन-विश्लेषण है। ज्ञान और क्रिया के सम्यग् योग से सम्पूर्ण आगम-साहित्य आलोकित है।

भगवान् महावीर ने अपना उपदेश तत्कालीन लोकभाषा अर्धमागधी (प्राकृत) में दिया। भाषा-विकास के क्रम में जो स्थान उस समय प्राकृत का था, वह आज हिन्दी ने प्राप्त कर लिया है। आज हिन्दी राष्ट्र के बहुस लोगों द्वारा बोली व समझी जाने वाली भाषा है। अत सर्व-साधारण को भगवान् महावीर की वाणी से परिचित कराने के लिए उसका हिन्दी व अन्य प्रादेशिक भाषाओं में अनुवाद कराना आवश्यक है।

जैन आगमों मे सैद्धान्तिक और तात्त्विक चर्चा के बीच–बीच यथाप्रसग मर्मस्पर्शी एव शिक्षाबोधक अनेक जीवननिर्माणकारी सूक्तिया (गाथाए) बिखरी पडी है। ये सूक्तिया जैन आगमों से सम्बद्ध होकर भी अपने मे सार्वजनीन सत्य और शाश्वत जीवन-मूल्यों को समेटे हुए है। एक-एक गाथा को जीवन-निर्माण का एक-एक सूत्र कहा जा सकता है। किसी भी राष्ट्र के सद्गृहस्थ और सभ्य नागरिक के लिए

ये सूक्तिया आचार-सहिता का कार्य कर सकती हैं। ऐसी सूक्तियों को सकलित और सपादित कर सर्वसाधारण में उनको प्रचारित प्रसारित करने की बडी आवश्यकता थी। सन्त विनोबा भावे की प्रेरणा से भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण-वर्ष में, 'समणसुत्त' ग्रथ के प्रणयन के रूप में यह ऐतिहासिक कार्य जैन-समाज के सभी आचार्यों और विद्वानों के समन्वित पुरुषार्थ और सहयोग से सम्पन्न हुआ।

समणसुत में सकलित गाथाओं का सर्वसाधारण में अधिकाधिक प्रचार प्रसार और भावन हो, इस दृष्टि से इसके पद्यानुवाद करने के कई प्रयत्न इधर हुए। आचार्य श्री विद्यासागर जी ने पूरे समणसुत का पद्यानुवाद किया जो 'जैन गीता' के नाम से प्रकाशित हुआ हैं। इसी प्रकार का प्रयत्न प्रस्तुत ग्रन्थ 'आगमतीर्थ' में किया गया हैं।

आगमतीर्थ के काव्यानुवादक डा० हरिराम आचार्य ने समणसुत से अपनी पसन्द की शताधिक गाथाओं का चयन कर, उनका सरल सुबोध भाषा-शैली और मधुर आकर्षक स्वर-लहरी में भावप्रवण अनुवाद किया हैं। डा० आचार्य सस्कृत साहित्य के विशिष्ट विद्वान् और कुशल प्राध्यापक होने के साथ-साथ सरस कवि, मधुर गीतकार एव सफल नाटककार भी हैं।

पाठक-वर्ग से मैं आशा करती हू कि इसके स्वाध्याय से स्व-पर का भेद-विज्ञान प्राप्त करके ससार सागर से तिरने की भावना उत्पन्न करेंगे जिससे इसका 'आगम-तीर्थ' नाम सार्थक होगा।

२२ १ ८०

—विचक्षण श्री
दादाबाडी, जयपुर

——

स्वगत-कथन

जैन-आगम-सूत्रो का यह पद्यबद्ध हिन्दी अनुवाद 'आगम-तीर्थ' के रूप मे प्रस्तुत है। महावीर स्वामी की 2500वी जयन्ती के अवसर पर जिस कार्य का श्री गणेश हुआ था, वह क्रमश विकसित होकर पुस्तकाकार बन सका है, इसे मैं किसी अज्ञात प्रेरणा-शक्ति का ही प्रसाद मानता हू।

आगम-सूत्रो का अनुवाद होने के कारण यह कृति धार्मिक-साहित्य की कोटि मे आती है, किन्तु अनुवाद-कार्य मे मेरी दृष्टि मूलत प्राकृत भाषा के प्रति साहित्यिक आकर्षण की रही है। प्राकृत आज अप्रचलित भाषा है, किन्तु उसका ऐतिहासिक ही नही, सास्कृतिक एव साहित्यिक महत्त्व है। 'अमिअ पाइअकव्व' (प्राकृत-काव्य अमृत है)—यह महाकवि हाल की अमर पक्ति है जिसे पढकर मैंने उनकी रचना "गाहासत्तसई" पर 1961 मे शोधकार्य प्रारम्भ किया था किन्तु उस कार्य के दौरान प्राकृत भाषा मे निबद्ध ललित साहित्य के मधुर पाश मे मेरा मन बँधकर रह गया। इसी क्रम मे जैनागम-साहित्य भी पढा और भगवान् महावीर की कृपा से उनकी वाणी के चुने हुए मुक्ताओ को हिन्दी पद्यो मे अवतरित करने की वलवती आकाक्षा फलवती होती चली गई।

आगम-तीर्थ मे कुल 232 सूत्रो का अनुवाद सकलित है, जिन्हे मगल, धर्म, आचार, चिन्तन और दर्शन नाम से पाँच पर्वों मे विभाजित किया गया है। अन्त मे सृजन-सुमन शीर्षक से कुछ स्वरचित स्वतन्त्र कविताओ को भी स्थान दिया गया है। 232 सख्या के तीनो अको का योग होता है—सात। सात का अक जैन-परम्परा मे पवित्र और मगलमय माना जाता है।

ये सूक्तिया आचार-सहिता का कार्य कर सकती हैं। ऐसी सूक्तियों को सकलित और सपादित कर सर्वसाधारण में उनको प्रचारित प्रसारित करने की बडी आवश्यकता थी। सन्त विनोबा भावे की प्रेरणा से भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण-वर्ष में, 'समणसुत्त' ग्रथ के प्रणयन के रूप में यह ऐतिहासिक कार्य जैन-समाज के सभी आचार्यों और विद्वानों के समन्वित पुरुषार्थ और सहयोग से सम्पन्न हुआ।

समणसुत में सकलित गाथाओं का सर्वसाधारण में अधिकाधिक प्रचार प्रसार और भावन हो, इस दृष्टि से इसके पद्यानुवाद करने के कई प्रयत्न इधर हुए। आचार्य श्री विद्यासागर जी ने पूरे समणसुत का पद्यानुवाद किया जो 'जैन गीता' के नाम से प्रकाशित हुआ है। इसी प्रकार का प्रयत्न प्रस्तुत ग्रन्थ 'आगमतीर्थ' में किया गया है।

आगमतीर्थ के काव्यानुवादक डा० हरिराम आचार्य ने समणसुत से अपनी पसन्द की शताधिक गाथाओं का चयन कर, उनका सरल सुबोध भाषा-शैली और मधुर आकर्षक स्वर-लहरी में भावप्रवण अनुवाद किया है। डा० आचार्य सस्कृत साहित्य के विशिष्ट विद्वान् और कुशल प्राध्यापक होने के साथ-साथ सरस कवि, मधुर गीतकार एव सफल नाटककार भी हैं।

पाठक-वर्ग से मैं आशा करती हू कि इसके स्वाध्याय से स्व-पर का भेद-विज्ञान प्राप्त करके ससार सागर से तिरने की भावना उत्पन्न करेंगे जिससे इसका 'आगम-तीर्थ' नाम सार्थक होगा।

२२ १ ८०

—विचक्षण श्री
दादाबाडी, जयपुर

——

स्वगत-कथन

जैन-आगम-सूत्रो का यह पद्यबद्ध हिन्दी अनुवाद 'आगम-तीर्थ' के रूप मे प्रस्तुत है। महावीर स्वामी की 2500वी जयन्ती के अवसर पर जिस कार्य का श्री गणेश हुआ था, वह क्रमश विकसित होकर पुस्तकाकार बन सका है, इसे मैं किसी अज्ञात प्रेरणा-शक्ति का ही प्रसाद मानता हू।

आगम-सूत्रो का अनुवाद होने के कारण यह कृति धार्मिक-साहित्य की कोटि मे आती है, किन्तु अनुवाद-कार्य मे मेरी दृष्टि मूलत प्राकृत भाषा के प्रति साहित्यिक आकर्षण की रही है। प्राकृत आज अप्रचलित भाषा है, किन्तु उसका ऐतिहासिक ही नही, सास्कृतिक एव साहित्यिक महत्त्व है। 'अमिअ पाइअकव्व' (प्राकृत-काव्य अमृत है)—यह महाकवि हाल की अमर पक्ति है जिसे पढकर मैंने उनकी रचना "गाहासत्तसई" पर 1961 मे शोधकार्य प्रारम्भ किया था किन्तु उस कार्य के दौरान प्राकृत भाषा मे निबद्ध ललित साहित्य के मधुर पाश मे मेरा मन बँधकर रह गया। इसी क्रम मे जैनागम-साहित्य भी पढा और भगवान् महावीर की कृपा से उनकी वाणी के चुने हुए मुक्ताओ को हिन्दी पद्यो मे अवतरित करने की बलवती आकाक्षा फलवती होती चली गई।

आगम-तीर्थ मे कुल 232 सूत्रो का अनुवाद सकलित है, जिन्हे मगल, धर्म, आचार, चिन्तन और दर्शन नाम से पाँच पर्वों मे विभाजित किया गया है। अन्त मे सृजन-सुमन शीर्षक से कुछ स्वरचित स्वतन्त्र कविताओ को भी स्थान दिया गया है। 232 सख्या के तीनो अको का योग होता है—सात। सात का अक जैन-परम्परा मे पवित्र और मगलमय माना जाता है।

ये 232 सूत्र विभिन्न आगम-सूत्रो से सकलित हैं। 'समणसुत्त के आलोक मे जिन स्रोतो से इन सूक्तियो को ग्रहण किया गया है उनका उल्लेख पुस्तक के अन्त मे 'गाथा-सकेत-सूची' मे कर दिया गय है।

यह 'आगम-तीर्थ' वाद-मुक्त, विवाद-निरपेक्ष विशुद्ध महावीर-वाणी का विनम्र अनुवाद-काव्य है, जिसमे अवगाहन करने वाले सहृदय को जैन-धर्म के महान् सिद्धान्तो का सरस परिचय मिलेगा।

प्रकाशन से पूर्व इन रचनाओ को मुनिश्री विद्यानन्दजी, आचार्य श्री तुलसी, मुनिश्री नथमलजी, मुनिश्री महेन्द्रकुमारजी, आचार्य श्री हस्तीमलजी, मुनिश्री सुशील कुमारजी, साध्वीश्री मणिप्रभाश्री जी तथा असख्य श्रावकगण ने मुझसे सुना-सराहा एव अपना आशीर्वाद प्रदान किया है।

जैन-धर्म के सभी सहृदय धर्म-परायण सज्जन इसे ग्रहण करें, अगीकृत करें, हृदयगम करें—यही कामना है।

पर्णकुटी, गगवाल पार्क
जयपुर
महाशिवरात्रि, वि. स २०३६
दिनाक १५-२-८०

विनयावनत,
डॉ० हरिराम आचार्य

——

समर्पण

उन पुण्यात्माओं को

जो

जैनागम की भाषा में

सम्य ् आचार की प्रतिमूर्ति हैं।

ाग - ीर्थ : पर्व-परम्परा

- मंगल-
- धर्म-पर्व
- आचार-पर्व
- चिन्तन-पर्व
- दर्शन-पर्व

एवं

- सृजन सुमन

। म-ती : सूत्र-परम्परा

पृष्ठ

ुतं

णमो अरिहंताण ।
णमो सिद्धाण ।
णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं ।
णमो लोए सव्वसाहूणं ।।१।।

एसो पंच णमुक्कारो सव्वपावप्पणासणो ।
मंगलाणं च सव्वेसिं पढमं हवइ मंगलं ।।२।।

ग

नमन हमारा अरिहन्तो को,
जो जग के सब ताप मिटाते।
जिनकी पावन चरण-धूलि से,
पग-पग पर तीरथ बन जाते ।।

नमन हमारा सिद्धजनो को,
तोड चुके जो भव की कारा।
जिनके सूर्य-सदृश नयनो से,
बहती है करुणा की धारा ।।

नमन हमारा आचार्यो को,
विश्व-वन्द्य जो आचरणो से।
सहज मुक्ति लिपटी रहती है,
जिनके मगलमय चरणो से ।।

फिर है नमन उपाध्यायो को,
जो जग मे निर्ग्रन्थ कहाते।

ज्ञान-ज्योति से तिमिर मिटाकर,
पथ-भूलो को राह दिखाते ॥

नमन हमारा साधुजनो को,
जो परहित के हैं अवतारी।
कोटि-जनो के लिए बनी हैं,
जिनकी पावन निधिया सारी ॥१॥

पाँच नमन ये पुण्य-विधायक,
इनसे होता पाप-शमन है।
सभी मगलो मे मगलमय,
यही प्रथम मगलाचरण है ॥२॥

———

अरहंता मंगलं ।
सिद्धा मंगलं ।
साहू मंगलं ।
केवलिपण्णत्तो धम्मो मंगलं ॥३॥

अरहंता लोगुत्तमा ।
सिद्धा लोगुत्तमा ।
साहू लोगुत्तमा ।
केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो ॥४॥

अरहंते सरणं पवज्जामि ।
सि[illegible] सरणं पवज्जामि ।
साहू सरणं पवज्जामि ।
केवलि-पण्णत्तं धम्म प[illegible]ामि ॥५॥

मगल हैं अरहन्त हमारे,
मगलमय है सिद्ध हमारे ।
मगलमय साधूजन सारे,
मगलमय है धर्म लोक मे,
जो कि केवली-प्रतिपादित है ॥३॥

लोकोत्तम अरहन्त हमारे,
लोकोत्तम है सिद्ध हमारे ।
लोकोत्तम साधूजन सारे,
लोकोत्तम है धर्म विश्व मे ।
जो कि केवली-प्रतिपादित है ॥४॥

अरहन्तो की शरण मैं स्वीकार करता हूं,
सिद्धजनो की शरण मैं स्वीकार करता हू ।
साधुजनो की शरण मैं स्वीकार करता हू,
सदा केवली-कथित धर्म की
शरण मैं स्वीकार करता हू ॥५॥

-परि ि- णं

झायहि पंच वि गुरवे,
मगल-चउ-सरण-लोय-परियरिए ।
णर-सुर-खेयर-महिए,
आराहण-णायगे वीरे ॥

घण-घाइ-कम्म-महणा,
तिहुवण-वर-भव्व- ल-मत्तंडा ।
अरिहा अणंतणाणी,
अणुवम-सोक्खा जयंतु जए ॥

अट्ठविह-कम्मवियला
णिट्ठिय । पणट्ठसंसारा ।
दिट्ठ-सयलत्थसारा
सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥

-पर ि-ध्यान

जो है मगलमय चतुः शरण,
लोकोत्तम आराध्य परम है।
नर-सुर-नभचर गण से पूजित,
कर्म-शत्रु के वीर विजेता हैं, नायक हैं।

आओ ऐसे पंच गुरुजनों का,
तन्मय हो ध्यान करे हम ॥६॥

सघन घाति-कर्मों के जो मन्थनकर्त्ता हैं,
त्रिभुवन के वर भव्य-कमल के जो दिनकर है।
जो अनन्त विज्ञानी, अनुपम सुखनिधान है,
जग मे ऐसे अर्हन्तो की सदा विजय हो ॥७॥

जो हैं निष्ठित-कार्य, अष्टकर्मों से विरहित,
जन्म-मरण के भव-बन्धन से जो विमुक्त है।
सकल-तत्त्व-दर्शन के जो महान् द्रष्टा हैं,
ऐसे सिद्ध पुरुष मुझको भी सिद्धि-दान दे ॥८॥

पंच-महव्वय-तुंगा,
तक्कालिय-सपरसमय-सुदधारा ।
णाणा-गुणगण-भरिया,
आइरिया मम पसीदंतु ।।

अण्णाण-घोर-तिमिरे,
दुरंत-तीरम्हि हिंडमाणाणं ।
भवियाणुज्जोययरा,
उवज्झाया वरमदिं देंतु ।।

थिर-धरिय-सीलमाला,
ववगय-राया जसोहपडिहत्था ।
बहु-विणय-भूसियंगा,
सुहाइं साहू पयच्छंतु ।।

अरिहंता [illegible]ीरा,
आयरिया उवज्झाय मुणिणो ।
पं[illegible]र-[illegible]ण्णो,
ओकारो पंच परमिट्ठी ।।

पच महाव्रत के पालन से जो उन्नत है,
तत्कालीन स्व-पर-समयो के श्रुत-धारक हैं ।
नाना गुण-गण के वैभव से जो मडित हैं,
वे आचार्य सदा मुझ सेवक पर प्रसन्न हो ॥९॥

जो अज्ञान-तिमिर के दुस्तर महासिन्धु मे,
दिशाहीन असहाय भटकते जीव-गणो को,
दिव्य-ज्ञान की परम-ज्योति से पथ दिखलाते,
ऐसे उपाध्याय-जन मुझको उत्तम गति दें ॥१०॥

शील-मालिका को जो नित धारण करते है,
राग-रहित है, कीर्ति-पुञ्ज से जो समृद्ध है ।
प्रवर विनय से जिनका अग-अग भूषित है,
ऐसे सज्जन साधु हमे सुखकोष दान दे ॥११॥

अर्हत्, अशरीरी, आचार्य, उपाध्याय, मुनि—
इन नामो के आदि अक्षरो से निष्पादित,
नाम 'ओम्' है, शब्दब्रह्म है, बीजरूप है ।
और पच परमेष्ठी गुरुजन का वाचक है ॥१२॥

———

उसहमजियं च वंदे,
संभवमभिणंदणं च सुमइं च ।
पउमप्पहं सुपासं,
जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥

सुविहिं च पुप्फयंतं,
सी सेयंस वासुपुज्जं च ।
विम णंत-भयवं,
धम्मं सन्ति च वंदामि च ॥

कुंथुं च जिणवरिन्दं,
अरं च मल्लिं च सुव्वयं च णमिं ।
वन्दामि रिट्ठणेमिं,
तह पासं व णं च ॥

चंदेहि णिम्मलयरा,
आइच्चेहिं अहियं ता ।
सायरवर-गंभीरा,
सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥

मैं चौबीस अर्हंतो का वन्दन करता हूं—
ऋषभ, अजित, सम्भव, अभिनन्दन,
सुमति, पद्मप्रभ और सुपार्श्व ।
चन्द्रप्रभ जिनके सुनाम है ।।१३।।

मैं चौबीस जिनो का शुभ वन्दन करता हू—
सुविधि (नाम है पुष्पदन्त), शीतल, श्रेयास
वासुपूज्य, श्रीविमल, अनन्त नाम है जिनका ।
धर्म और प्रभु शान्ति-विश्व मे वन्दनीय है ।।१४।।

जिनवरेन्द्रगण का मै शुभ-वन्दन करता हू—
कुन्थु और अर, मल्लि, सुव्रत, नमि,
(अ) रिष्टनेमि के बाद पार्श्व, फिर वर्धमान है,
[ये चौबीस तीर्थङ्कर—जो सदा सभी के वन्दनीय है] ।।१५।।

चन्द्रगणो से शुभ्र विमलतर,
आदित्यो से अधिक भास्वर ।
सागर से गम्भीर – जगत् में,
सदा सिद्धगण मुझे सिद्धि दें ।।१६।।

———

हावीर-त

णाणं सरणं मे दसण,
च सरण च चरिय सरण च ।
तव संजम च सरणं,
भगव सरणो महावीरो ।।

से सव्वदसी अभिभूय-णाणी,
णिरामगधे धिइम ठियप्पा ।
अणुत्तरे सव्वजगसि वि ,
गथा अतीते अभए अणाऊ ।।

से भूइपण्णे अणिएअचारी,
ओहतले धीरे अणत ।
अणुत्तरे तवइ सूरिए व,
वडरोयणि देव तम पगासे ।।

हा ीर-स्   -

ज्ञान मेरा शरण, दर्शन भी शरण है,
और सच्चारित्र्य-पालन भी शरण है।
शरण है मेरा अडिग तप और सयम,
महावीर महान् प्रभु मेरी शरण है।।

महावीर भगवान्, सर्वदर्शी, धृत-केवल-ज्ञान थे,
धैर्यशील, स्थिर-आत्म, विश्व मे अद्वितीय विद्वान् थे।
मूल और उत्तर-गुण-मण्डित, सच्चारित्र्य-निधान थे,
ग्रन्थातीत, अनायु, अभय—श्री महावीर भगवान् थे।।

महावीर थे भूतिप्रज्ञ-अनिकेतचरण थे,
धीर अनन्तचक्षु थे, वे ससार-तरण थे।
दिव्य ताप मे अद्वितीय जैसे दिनकर थे,
तम के उद्भासक वे ज्योतित वैश्वानर थे।।

हत्थीसु एरावणमाहु णाए,
सीहो मिगाण सलिलाण गगा।
पक्खीसु वा गरुले वेणुदेवो,
नि० ादीणिह नायपुत्ते ॥

दाणाण सेट्ठ अभयप्पयाण,
सच्चेसु वा अणवज्जं वयति।
तवेसु वा म बंभचेर,
लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते ॥

जयइ जग-जीव-जोणी-,
वियाणओ जगगुरू जगाणदो।
जगणाहो जगबधू,
जयइ जगि ामहो भयव ॥

जयइ सुयाणं पभवो,
तित्थयराणं अपच्छिमो जयइ।
जयइ गुरू लोगाणं,
जयइ महप्पा महावीरो ॥

जय वीयराय! जग-गुरू!
होउ मम तुह पभावओ भयव।
भवणिव्वेओ ा–
णुसारिया इट्ठफलसिद्धी ॥

जैसे गज-समूह मे ऐरावत वरिष्ठ है,
नदियो मे गगा, पशुओ मे सिह श्रेष्ठ है ।
विहगो मे विशिष्ट विनता का विनत पुत्र है,
त्यो निर्वाणवादियो मे वर ज्ञात पुत्र' है ।।

जैसे अभयदान दानो मे श्रेष्ठ दान है,
सत्यो मे निर्दुष्ट वचन का अधिक मान है ।
तपोजगत् मे ब्रह्मचर्य जैसे सर्वोत्तम,
वैसे श्रमणो मे है ज्ञातपुत्र लोकोत्तम ।।

जगत्-जीव के उद्गम के विज्ञायक की जय,
जगद्गुरू की, जगदानन्द-विधायक की जय ।
जगन्नाथ की, जगद्बन्धुवर की हो जय-जय,
जगत्-पितामह प्रभु परमेश्वर की हो जय-जय ।।

द्वादशाग श्रुत-रत्नो के सागर की जय हो,
अर्हन्तो मे अन्तिम तीर्थङ्कर की जय हो ।
लोको के गुरुवर गम्भीर धीर की जय हो,
जग मे श्रमण-महात्मा महावीर की जय हो ।।

हे वीतराग ! हे जगद्गुरो ! हे भगवन् !
दो निज प्रभाव से यही दान करुणाघन !
मैं भव-विरक्त हो, मोक्ष-मार्ग पर चलकर,
पाऊँ अभीष्ट-फलसिद्धि—दयामय जिनवर ! !

तस्स मुहुग्गदवयणं,
पुव्वापरदोसविरहिय सुद्धं ।
आगममिदि परिकहियं,
तेण दु कहिया हवंति तच्चत्था ।।

अरहंत भासियत्थं,
गणधरदेवेंहि गंथिदं सम्मं ।
पणमामि भत्तिजुत्तो,
सुदणाण-महोदहिं सिरसा ।।

संघ-सुत्तं

संघो गुणसंघाओ,
संघो य विमोचओ य कम्माणं ।
दंसण - णाणचरित्ते,
संघायंतो हवे संघो ।।

रयणत्तयमेव गणं,
गच्छं गमणं मोक्खमग्गस्स ।
संघो गुण-संघादो,
समयो खलु णिम्मलो अप्पा ।।

गम-लक्षण

अर्हत् के मुख से उद्गत है,
जो पूर्वापर-दोषरहित है,
ऐसे शुद्ध वचन को हम कहते हैं 'आगम',
है तथ्यार्थ वही जिसका आगम है उद्गम।

अर्हन्तो का उपदिष्ट अर्थ है जिसमे,
गणधर-देवो ने किया सूत्र मे ग्रन्थन।
श्रुतज्ञानरूप उस दिव्य महासागर का,
नतमस्तक होकर करता हू मैं वन्दन॥

संघ-सूत्र

कर्मो का है ख्यात विमोचक,
जो गुण का सघात कहाता।
रत्न-त्रय का जो सघातक,
वही 'सघ' जग मे कहलाता॥

जिनमत मे रत्न-त्रय 'गण' है,
मोक्ष-मार्ग मे गमन 'गच्छ' है।
गुण-समूह का नाम 'सघ' है,
'समय' आत्मा विमल स्वच्छ है॥

कम्म–रय–जलोह–विणिग्गयस्स,
सुय – रयण – दीह – नालस्स ।
पंच महव्वय–थिर – कण्णियस्स,
गुण – केसरालस्स ॥

सावग–जण– महुयर–परिवुडस्स,
जिण – सूरतेय – बुद्धस्स ।
संघ – पउमस्स भद्दं,
समण – गण – सहस्सपत्तस्स ॥

[गीति]

संघ तो शतदल कमल है,
कर्म-रज की जल-सतह पर तैरता जो,
नीर से निर्लिप्त, विकसित है, विमल है ॥

×

दीर्घ जिसकी नाल है श्रुत-रत्न सुन्दर,
हैं महाव्रत पच जिसकी कर्णिका स्थिर,
और गुण-समुदाय ही केसर-मुकुल है ॥

× ×

सदा श्रावक-मधुकरो से जो घिरा है,
और जिन-रवि की प्रभा से जो खिला है,
श्रमण-गण जिसका प्रफुल्लित पत्र-दल है ॥

× × ×

यह कमल जग मे कभी ना म्लान हो,
सदा ही इस कमल का कल्याण हो,
प्राप्त जिसको जिन-कृपा का रश्मि-फल है ॥

म्म- ुत्तं

धम्मो मंगल – मुक्कि ,
अहिंसा सं ो तवो ।
देवा वि तं णमंसंति,
जस्स धम्मे सया मणो ।।

धम्मो वत्थुसहावो,
खमादि भावो य विहो ो ।
रयणत्तयं च धम्मो,
जीवाणं रक्खणं धम्मो ।।

जरा – मरण – वेगेणं,
वुज्झमाणाण पाणिणं ।
धम्मो दीवो पइट्ठा य,
गई सरणमुत्तम ।।

धर्म - १

धर्म ही उत्कृष्ट मगल है,
अहिंसा – संयम तपोमय जो ।
देव भी उसको नमन करते,
धर्म मे जिसका सदा मन हो ।।

वस्तु – स्वभाव धर्म होता है,
हैं क्षमादि दश पावन धर्म ।
रत्नत्रयी भी परम धर्म है,
है जीवो का रक्षण धर्म ।।

जरा – मरण के प्रबल वेग से,
सतत समय – धारा मे बहते ।
गोते खाते प्राणिमात्र के लिए,
धर्म ही एक द्वीप है ।।
धर्म प्रतिष्ठा,
धर्म एक गति,
और धर्म ही श्रेष्ठ शरण है ।।

जहा सागडिओ जाणं,
समं हिच्चा महापहं।
विसमं मग्ग – मोइण्णो,
अक्खे भग्गम्मि सोयई ।।

एवं धम्मं विउक्कम्म,
अहम्मं पडिवज्जिआ।
बाले मच्चुमुहं पत्ते,
अक्खे भग्गे व सोयई ।।

जा जा वच्चइ रयणी,
न सा पडिनियत्तई।
अहम्मं कुणमाणस्स,
अफला जन्ति राइओ ।।

जा जा वच्चइ रयणी,
न सा पडिनियत्तई।
धम्मं च कुणमाणस्स,
सफला जन्ति राइओ ।।

जैसे गाडीवान अनाडी जानबूझकर,
सीधा – सरल राजपथ तजकर,
विषम मार्ग पर शकट चलाता,
और राह मे कही शकट की
धुरी टूट जाने पर रोता-पछताता है;

वैसे ही, हर मूरख प्राणी जानबूझकर,
सीधा-सरल धर्म-पथ तजकर
है अधर्म का पथ अपनाता,
और मृत्यु–मुख मे जीवन की
धुरी टूट जाने पर रोता-पछताता है ।।

जो जो रात बीत जाती है,
वह न लौटकर वापस आती ।
जो अधर्म का पालन करता,
उसकी सभी रात्रियाँ ढलती अफला होकर ।।

जो जो रात बीत जाती है,
वह न लौटकर वापस आती ।
किन्तु धर्म-पालन करता जो,
उसकी सभी रात्रियाँ ढलती सफला होकर ।।

जरा जाव न पीडेई,
वाही जाव ण वड्ढई।
जाविंदिया ण हायंति,
ताव धम्मं ायरे ।।

जहा य तिण्णि वणिया मूलं घेत्तूण णिग्गया,
एगोत्थ लहई लाहं एगो मूलेण आगओ।
एगो मूलं पि हारित्ता आगओ तत्थ वाणिओ,
ववहारे उवमा एसा एवं धम्मे वियाणह ।।

धम्म- -सुत्तं

(अहिंसा)

सव्वेसिमासमाणं,
हिदयं गब्भो व सव्वसत्थाणं।
सव्वेसिं वदगुणाणं,
पिंडो सारो अहिंसा हु ।।

तुंग न मंदराओ,
आगासाओ विसालयं नत्थि।
जह तह जयंमि जाणसु,
धम्ममहिंसासमं नत्थि ।।

जब तलक आये बुढापा, देह का कचन गलाये,
व्याधियो की फौज चढकर शक्ति सारी लील जाये।
जब तलक है इन्द्रियो मे शक्ति विषयो के ग्रहण की,
तब तलक ही जमा कर लें सम्पदा धर्माचरण की ।।

तीन वणिक् धन लेकर निकले, करने को कोई व्यवसाय,
पहला लाभ कमाकर लौटा, दूजा लाया मूल बचाय।
तीजा मूल गँवाकर लौटा, इस उपमा पर करो विचार,
और समझ लो मन ही मन मे मर्म धर्म का भली प्रकार ।।

धर्म-चक्र-सूत्र

(अहिंसा)

अहिंसा सब आश्रमो का हृदय है,
अहिंसा शास्त्रोक्त पावन धर्म है।
सब व्रतो का सब गुणो का जगत् मे,
अहिंसा ही पिण्डरूपित मर्म है ।।

नही मेरु से ऊँचा कोई,
विस्तृत कोई नही गगन से।
कोई बढकर नही जगत् मे,
धर्म—अहिंसा के पालन से ।।

तत्थिमं पढमं ठाणं,
महावीरेण देसियं।
अहिंसा निवुणा दिट्ठा,
सव्वभूएसु मो ॥

जीववहो अप्पवहो,
जीवदया अप्पणो दया होइ।
ता सव्वजीवहिंसा,
परिचत्ता अत्तकामेहिं ॥

सव्वे जीवा वि इच्छंति,
जीविउं ण मरिज्जिउं।
तम्हा पाणिवहं घोर,
णिग्गंथा वज्जयंति णं ॥

(सं ो)

एगओ विरइं कुज्जा,
एगअ य पवत्तणं।
असंजमे नियत्ति च,
संजमे च पवत्तणं ॥

सभी प्राणियो के प्रति अविचल सयम मे,
निपुण अहिंसा के दर्शन कर।
महावीर स्वामी ने यह आदेश किया है—
सब धर्मो मे पहला स्थान अहिंसा का है॥

जीव-हनन ही आत्म-हनन है,
जीव-दया ही आत्म-दया है।
इसीलिए तो आत्मकाम पुरुपो ने हरदम,
सर्व-जीव-हिंसा का जग मे त्याग किया है॥

सभी जीव जीने के इच्छुक,
मरना कोई नही चाहता।
इस कारण, प्राणी की हिंसा घोर पाप है,
इसीलिए निर्ग्रन्थ सदा ही,
हिंसा का वर्जन करते हैं॥

(संयम)

एक ओर से करो निवर्तन,
एक ओर को करो प्रवर्तन।
करो असयम से निवृत्ति, तो
सयम मे नित करो प्रवर्तन॥

करो तपोबल-ज्ञान-ध्यान से,
विषय-कषायो का विनियन्त्रण ।
जैसे कुशल सारथी करता,
अश्वो की वल्गा का कर्षण ॥

जैसे कच्छप निज अगो का,
कर लेता तन मे सहार ।
वैसे मेधावी पापो का,
करता आत्मा से परिहार ॥

सदा क्षमा से हनो क्रोध को,
मृदुता से जीतो तुम मान ।
ऋजुता से जीतो माया को,
तोष लोभ का जयी निदान ॥

राग-द्वेष है पाप-प्रवर्तक,
जो इनका निरोध कर पाता ।
जग के विषय-कषाय-व्यूह से,
ऐसा भिक्षु मुक्त हो जाता ॥

णाणेण य झाणेण य,
तवोबलेण य निरूभति ।
इंदिय - विसय - कसाया,
धरिया तुरगा व रज्जूहिं ।।

जहा कुम्मे सअंगाई,
सए देहे समाहरे ।
एव पावाइं मेहावी,
अज्झप्पेण समाहरे ।।

उवसमेण हणे कोहं,
माण मद्दवया जिणे ।
मायं चऽज्जवभावेण,
लोभं सतोसओ जिणे ।।

रागे दोसे य दो पावे,
पावकम्म – पवत्तणे ।
जे भिक्खू रुभई निच्च,
से न अच्छइ मडले ।।

करो तपोवल-ज्ञान-ध्यान से,
विषय-कषायो का विनियन्त्रण।
जैसे कुशल सारथी करता,
अश्वो की वल्गा का कर्षण॥

जैसे कच्छप निज अगो का,
कर लेता तन मे सहार।
वैसे मेधावी पापो का,
करता आत्मा से परिहार॥

सदा क्षमा से हनो क्रोध को,
मृदुता से जीतो तुम मान।
ऋजुता से जीतो माया को,
तोष लोभ का जयी निदान॥

राग-द्वेष हैं पाप-प्रवर्तक,
जो इनका निरोध कर पाता।
जग के विषय-कषाय-व्यूह से,
ऐसा भिक्षु मुक्त हो जाता॥

जत्थ ।यणिरोहो,
बंभं जिणपूजणं अणसणं च ।
सो सव्वो चेव तवो,
विसेसओ मुद्धलोयम्मि ।।

अणसणमूणोयरिया,
भिक्खायरिया य रसपरिच्चाओ ।
कायकिलेसो सलीणया,
य बज्झो तवो होइ ।।

पायच्छित्त विणओ,
वेयावच्च तहेव सज्झावो ।
झाणं च विउस्सग्गो,
एसो अब्भिंतरो तवो ।।

नाणमयवायसहिओ,
सीलुज्जलिओ तवो मओ अग्गी ।
ससार-करण बीयं,
दहइ दवग्गी व तणरासिं ।।

विषय-कषाय-निरोध और जिन-पूजन,
अनशन व्रत औ' ब्रह्मचर्य का पालन।
ये चारो ही तपश्चरण है, जिनका—
पालन करते मुग्धभाव से जनगण ।।

अनशन, ऊणोदरिका औ' भिक्षाटन,
कायक्लेश, सलीनभाव, रसवर्जन।
ये षड्विध श्रुतविहित 'बाह्यतप' होते,
जिनके पालन से साधक होता पावन ।।

प्रायश्चित्त, विनय, वयावृत्यादिक,
स्वाध्याय, ध्यान, व्युत्सर्ग—कहे जाते है।
सद्धर्म-चक्र के चरम-सूत्र के क्रम मे,
ये षड्विध 'आभ्यतर तप' कहलाते है ।।

ज्ञान-वायु से, शीलरूप समिधा से,
प्रज्वलित तपोमय अग्नि जला देता है—
ससार-करण के कर्मबीज को ऐसे,
अपनी ज्वालामय जिह्वाएँ फैलाकर,
दावानल पल मे भस्मसात् कर देता—
जगल मे सूखे तृण-समूह को जैसे ।।

त जइ इच्छसि गंतुं,
तीरं भवसायरस्स घोरस्स ।
तो तव-संजम-भंडं,
सुविहिय ! गिण्हाहि तूरतो ॥

दस-धम्म-सुत्तं

उत्तमखम-मद्दव-ज्जव—
सच्च-सउच्च च संजम चेव ।
तव - चागम - किंचण्हं,
बम्ह इदि दसविहो धम्मो ॥

कोहेण जो ण तप्पदि,
सुर-णर- तिरिएहिं कीरमाणे वि ।
उवसग्गे वि रउद्दे,
तस्स खमा णिम्मला होदि ॥

कुल—रूव—जादि—बुद्धिसु
तव-सुद-सीलेसु गोरवं किंचि ।
जो णवि कुव्वदि समणो
मद्दव - धम्मं हवे तस्य ॥

हे सुविहित ! यदि जाना चाहे,
घोर भवार्णव के उस पार।
तो तप-सयम-रूप पोत को,
बना शीघ्र अपना आधार॥

दशधर्म-सूत्र

क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य,
शौच और सयम, तप, त्याग।
आकिञ्चन्य, ब्रह्मचारित्व—
इन दशविध भावो का दूजा नाम धर्म है॥

सुर-नर-तिर्यञ्चो के द्वारा किया गया हो,
चाहे कितना ही भीषण उपसर्ग-विकार।
फिर भी नर का कभी क्रोध से तप्त न होना,
कहलाता है उत्तम क्षमा-धर्म का सार॥

उन्नत कुल, तप, रूप, जाति का,
शील, ज्ञान, श्रुत का अभिमान।
जिसे न होता—वही मार्दव—
धर्म-व्रती है श्रमण महान्॥

जो चिंतेइ ण वंकं
ण कुणदि वंकं ण जंपदे वंकं।
ण य गोवदि णियदोसं
अज्जवधम्मो हवे तस्स ॥

पर – संतावय – कारण
वयणंमोत्तूण सपरहिदवयण।
जो वददि भिक्खु तुरियो
तस्स दु धम्मो हवे सच्च ॥

विस्ससणिज्जो माया व
होइ पुज्जो गुरु व्व लोअस्स।
सयणु व्व सच्चवाई
पुरिसो सव्वस्स होइ पिओ ॥

सम - संतोष - जलेणं
जो धोवदि तिव्वलोहमलपुंज।
भोयण-गिद्धि - विहीणो
तस्य सउच्चं हवे विमलं ॥

कुटिल विचार, कुटिल कर्मों से,
कुटिल वचन से रहना मुक्त।
अपने दोषों को न छिपाना,
यही आर्जव - ऋजुतायुक्त ।।

निज वचनों से कभी किसी को,
जो सन्ताप नहीं पहुंचाता।
निज-पर-हितकर वचन उसी का,
जग मे उत्तम सत्य कहाता ।।

विश्वसनीय सदा माता - सा,
पूज्य लोक मे है गुरुजन - सा।
सत्य - परायण जन होता है,
प्यारा जग मे सदा स्वजन - सा ।।

समता औ' सन्तोषगुणों के पावन जल से,
तीव्र लोभ के मल-समूह को जो धोता है।
भोजन की लिप्सा से जिसका मन विमुक्त है,
उसके मन मे उत्तम शौचधर्म होता है ।।

वय - समिदि - कसायाण

दंडाणं तह इंदियाणं पंचण्हं ।

धारण-पालण- णिग्गह-

चाय-जओ संजमो भणिओ ।।

विसय-कसाय-विणिग्गह

भावं काऊण झाण-सज्झाए ।

जो भावइ णं

तस्स तवं होदि णियमेण ।।

जे य कंते पिए भोए

लद्धे विपिट्ठिकुव्वइ ।

साहीणे चयई भोए

से हु चाइ त्ति वुच्चई ।।

चत्त - पुत्त - त्तस्स

निव्वावारस्स भिक्खुणो ।

पियं ण विज्जई किंचि

अप्पियं पि ण विज्जए ।।

व्रतो, समितियो और कपायो,
दडो और इन्द्रियो का ही—
क्रमश धारण, पालन, निग्रह,
त्याग, विजय—उत्तम सयम है ।।

विषयो और कषायो के निग्रह से,
ध्यान और स्वाध्याय-नियम के द्वारा,
जो आत्मा को भावित कर लेता है,
उत्तम तप का धर्म उसी का धन है ।।

कान्त और प्रिय भोग-विषय मिलने पर,
जो कि पराड् मुख स्वेच्छा से हो जाता,
तथा पूर्ण स्वाधीन भोग तजता है,
उत्तम त्याग धर्म उसका कहलाता ।।

जिसने पुत्र कलत्र-कर्म सब त्यागे,
जिसको प्रिय-अप्रिय का द्वन्द्व नही है ।
उस अनगार असग भिक्षु के मन मे,
उत्तम आकिञ्चन्य धर्म रहता है ।।

तेलोक्काड - विडहणो
कामाग्गी-विसय रुक्ख-पज्जलिओ।
जोवण - तणिल्लचारी
ज ण डहइ सो हवइ धण्णो।।

भोच्चा माणुस्सए भोए अप्पडिरूवे अहाउयं।
पुव्वं विसुद्धसद्धम्मे केवलं बोहि बुज्झिया।।
चउरंगं दुल्लह मत्ता संजमं पडिवज्जिया।
तवसा धुयकम्मंसे सिद्धे हवइ सासए।।

यौवन-तृण-दल पर विचरण मे चचल,
विषय-वृक्ष से ज्वलित हुआ कामानल,
सदा भस्म करता है त्रिभुवन-कानन ।
किन्तु जिसे यह पाता जला नही है,
उत्तम ब्रह्मचर्य का व्रती वही है,
उसी धन्य व्रतधारी का है वन्दन ।।

आयु अवधि मे मनुज भोगता जाने कितने अनुपम भोग,
पूर्वार्जित सद्धर्म-विभव से करता केवल-बोधि-सुयोग ।।
धर्मचक्र के अन्य चरण मे आत्म-नियम का कर सुविचार,
दुर्लभ जान चार अगो को सयम-व्रत करता स्वीकार ।
काट कर्म-कारा को तप से फिर कर लेता सिद्धि-समागम,
यही सिद्धपद शाश्वत होता है—ऐसा कहते जैनागम ।।

———

तेलोक्काड - विडहणो
कामाग्गी-विसय रुक्ख-पज्जलिओ ।
जोवण - तणिल्लचारी
ज ण डहइ सो हवइ धण्णो ॥

भोच्चा माणुस्सए भोए अप्पडिरूवे अहाउयं ।
पुव्वं विसुद्धसद्धम्मे केवलं बोहि बुज्झिया ॥
चउरंगं दुल्लह मत्ता संजमं पडिवज्जिया ।
तवसा धुयकम्मसे सिद्धे हवइ सासए ॥

यौवन-तृण-दल पर विचरण मे चचल,
विषय-वृक्ष से ज्वलित हुआ कामानल,
सदा भस्म करता है त्रिभुवन-कानन ।
किन्तु जिसे यह पाता जला नही है,
उत्तम ब्रह्मचर्य का व्रती वही है,
उसी धन्य व्रतधारी का है वन्दन ।।

आयु अवधि मे मनुज भोगता जाने कितने अनुपम भोग,
पूर्वार्जित सद्धर्म-विभव से करता केवल-बोधि-सुयोग ।।
धर्मचक्र के अन्य चरण मे आत्म-नियम का कर सुविचार,
दुर्लभ जान चार अगो को सयम-व्रत करता स्वीकार ।
काट कर्म-कारा को तप से फिर कर लेता सिद्धि-समागम,
यही सिद्धपद शाश्वत होता है-ऐसा कहते जैनागम ।।

———

प्प- ुत्तं

अप्पा नई वेयरणी
अप्पा मे कूड-सामली।
अप्पा कामदुहा धेणु
अप्पा मे णन्दण वणं ॥

अप्पा कत्ता विकत्ता य
दुक्खाण य सुहाण य।
अप्पा मित्तममित्तं य
दुप्पट्ठि सुपट्ठिओ ॥

ा चेव दमेयव्वो
अप्पा हु खलु दुद्दमो।
अप्पा दन्तो सुही होइ
अस्सि लोए परत्थ य ॥

ात्म-

आत्मा है वैतरणी सरिता,
आत्मा कामधेनु पावन है।
आत्मा कूट-शाल्मली तरु है,
आत्मा मेरा नन्दन-वन है॥

आत्मा कर्ता और विकर्ता,
दुख और सुख का है जग मे।
आत्मा सन्मार्गी का सहचर,
और शत्रु है निन्दित मग मे॥

दमन करो अपने आत्मा का,
क्योकि यही तो कार्य कठिन है।
उभयलोक मे होता सुखमय,
आत्मदमी का ही जीवन है॥

वर मे अप्पा दन्तो
संजमेण तवेण य।
माऽहं परेहिं दम्मन्तो
बन्धणेहि वहेहि य॥

जो सहस्सं सहस्साणं
संगामे दुज्जए जिणे।
एग जिणेज्ज अप्पाणं
एस से परमो जओ॥

अप्पाणमेव जुज्झाहि
किं ते जुज्झेण बज्झओ।
अप्पाणमेव अप्पाणं
जइत्ता सुहमेहए॥

पंचिन्दियाणि कोहं
माणं मायं तहेव लोहं च।
दुज्जयं चेव अप्पाणं
सव्वमप्पे जिए जियं॥

दमन करे मेरे आत्मा का,
कोई वध से या बन्धन से।
इससे अच्छा सयम-तप से,
दमी बनू मैं स्वय दमन से॥

वीर अजय अरिदल-सहस्र को,
समरभूमि मे करता जय है।
वही एक आत्मा को जीते,
तो यह उसकी परम विजय है॥

युद्ध करो अपने आत्मा से,
बाह्य युद्ध से क्या होता है?
आत्मा से आत्मा का जेता,
जग मे सुखी सदा होता है॥

पचेन्द्रियाँ, क्रोध औ' माया,
लोभ, मान-सब कुछ दुर्जय है।
पर सबसे दुर्जय है आत्मा,
आत्म-विजय ही सर्वविजय है॥

जस्सेव-मप्पा उ हवेज्ज निच्छिओ
चइज्ज देह ण हु धम्मसासण।
तं तारिसं णो पइलेन्ति इन्दिया
उविंतवाया व सुदंसणं गिरिं॥

अप्पा खलु सययं रक्खियव्वो
सव्विन्दिएहिं सुसमाहिएहिं।
अरक्खिओ जाइपहं उवेइ
सुरक्खिओ सव्वदुहाण मुच्चइ॥

———

देह तजू, पर धर्म न जाये,
जिसके आत्मा का निश्चय है।
उसे इन्द्रियाँ नही डिगाती,
ज्यो आँधी मे अडिग मलय है ॥

करें हम आत्मा की सतत रक्षा,
हमारी सब समाहित इन्द्रियो से।
अरक्षित आत्मा भव में भटकता,
सुरक्षित मुक्त हो जाता दुखो से ॥

———

ा - ुत्तं

सल्लं कामा विसं ।
कामा आसीविसोवमा ।
कामे य पत्थेमाणा
अकामा जन्ति दुग्गइं ।।

सव्वं विलवियं गीयं
सव्वं नट्टं विडम्बियं ।
सव्वे आभरणा भारा
सव्वे कामा दुहावहा ।।

जहा किंपागफलाणं
परिणामो ण सुंदरो ।
एवं भुत्ताण - भोगाणं
परिणामो ण सुंदरो ।।

। -

काम शल्य है, काम जहर है,
काम भयकर सर्प-समान।
विषय–भोग के कामी दुर्गति
पाते है—यह निश्चय जान ।।

सब सगीत विलापरूप है,
सारे नाट्य विडम्बन है।
सब आभूषण भाररूप है,
काम दु:ख के भाजन है ।।

जैसे है किंपाक फलो का,
रूप देखने भर को सुन्दर।
वैसे भुक्त सभी भोगो की,
परिणति कभी न होती सुखकर ।।

खणमेत्तसो बहुकालदुक्खा
पगामदुक्खा अणिगामसोक्खा ।
ससार-मोक्खस्स विपक्ख – भूया
खाणी अणत्थाण उ काम भोगा ।।

मोक्खमग्ग–रयण सुत्तं

मग्गो मग्गफल ति य
दुविह जिणसासणे समक्खादं ।
मग्गो खलु सम्मत्तं
मग्गफलं होइ णिव्वाणं ।।

दंसणणाण - चरित्ताणि
मोक्खमग्गो त्ति सेविदव्वाणि ।
साधूहिं इद भणिदं
तेहिं दु बधो व मोक्खो वा ।।

णिच्छय-ववहार- ;
जो रयणत्तयं ण जाणइ सो ।
जे कीरइ तं मिच्छा—
रूवं सव्वं जिणुद्दिट्ठं ।।

क्षण भर सुख, बहुकाल दुख है,
सुख है न्यून, अधिक दुख जान।
मोक्षमार्ग के शत्रु भयानक,
काम अनर्थों की हैं खान।।

मोक्षमार्ग—रत्नत्रयसूत्र

मार्ग-मार्गफल- दो तत्त्वो का,
जिनशासन में है आख्यान।
सम्यक्ता है मार्ग श्रेष्ठतम,
और मार्गफल है निर्वाण।।

मोक्षमार्ग है सम्यक् दर्शन,
सम्यक् ज्ञान और चारित्र।
बन्ध मोक्ष के लिए नियमत,
हो निश्चय-व्यवहार पवित्र।।

निश्चय औ' व्यवहाररूप,
रत्नत्रय से जो है अनजान।
'जिन' के मत मे उसके सारे,
कार्यो को मिथ्या ही मान।।

धम्मादीसद्दहणं,
सम्मत्तं णाणमंगपुव्वगदं।
चिट्ठा तवंसि चरिया,
ववहारो मोक्खमग्गो त्ति॥

नादंसणिस्स नाणं,
नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा।
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो,
नत्थि ोक्खस्स निव्वाणं॥

अप्पा अप्पम्मि रओ,
सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।
जाणइ तं सण्णाणं,
चरदिह चारित्तमग्गु त्ति॥

सम्मत्त - रयणसारं,
मोक्ख-महारुक्ख-मूलमिदि भणियं।
तं जाणिज्जइ णिच्छय—
ववहार - सरूवदो - भेयं॥

धर्म आदि मे श्रद्धा है सम्यक् दर्शन,
ज्ञान अगपूर्वो का सम्यक् ज्ञान है।
तप निष्ठा मे वर्तन है सम्यक् चारित्र,
यही रत्न-त्रय सच्चा मोक्ष-विधान है ॥

सम्यक् दर्शन बिना न होता ज्ञान है।
बिना ज्ञान कैसा चारित्र्य-विधान है ?
बिन चारित्र्य मोक्ष कैसे मिल पायगा ?
मोक्ष बिना निर्वाण कहाँ से आयगा ??

आत्मा से आत्मा-रत होना
ही सम्यक् दर्शन कहलाता।
आत्म – ज्ञान – सज्ञानरूप है,
आत्म–चरण चारित्र्य कहाता ॥

सम्यक्–दर्शन सूत्र

मोक्ष-महातरु का महिमामय मूल है,
सम्यक् दर्शन, रत्नत्रय का सार है।
दो भेदो मे इसका रूप विभक्त है,
एक रूप 'निश्चय', दूजा 'व्यवहार' है ॥

जह सलिलेण ण लिप्पइ,
कमलिणीपत्तं सहावपयडीए ।
तह भावेण ण लिप्पइ,
ाय - विषएहिं सप्पुरिसो ।।

सूई जहा ससुत्ता,
न नस्सई कयवरम्मि पडिश्रा वि ।
जीवो वि तह ससुत्तो,
न नस्सइ गश्रो वि ससारे ।।

जेण तच्चं विबुज्झेज्ज,
जेण चित्तं णिरुज्झदि ।
जेण श्रत्ता विसुज्झेज्ज,
तं णाण जिणसासणे ।।

सुबहुं पि सुयमहीय,
किं काहिइ चरणवि हीणस्स ।
श्रधस्स जह पलित्ता,
दीव-सय-सहस्स-कोडी वि ।।

जैसे शतदल सहज प्रकृति के कारण,
लिप्त नही होता है कभी सलिल से।
वैसे ही सम्यक्त्व – भाव से सज्जन,
लिप्त न होता कभी कषाय–कलिल से ।।

सम्यक्-ज्ञान सूत्र

गिरने पर भी कभी न खोती,
ज्यो ससूत्र सूई आगन मे।
सूत्रयुक्त हो जीव अगर तो,
नष्ट नही होता जीवन मे ।।

वही ज्ञान है जिन शासन मे,
जिससे होता तत्त्व – विबोध।
जिससे आत्मा का विशोध हो,
जिससे होता चित्त – निरोध ।।

सम्यक्-चारित्र्य सूत्र

अन्धे के आगे जलती,
दीपावलि का क्या अर्थ है?
वैसे ही चारित्र्य-शून्य का,
श्रुत-अधीत सब व्यर्थ है ।।

सद्धं नगर किच्चा,

तवसंवर – म ं।

खन्ति निउणपागारं,

तिगुत्तं दुप्पधंसयं ॥

×

तवनाराय – जुत्तेण,

भित्तूणं कंचुय।

मुणी विगयसंगामो,

भवाओ परिमुच्चए ॥

रयणत्तय–संजुत्तो,

जीवो वि हवेइ उत्तमं तित्थं।

संसारं तरइ जदो,

रयण–त्तय–दिव्व–णावाए ॥

श्रद्धा को इक नगर बनाओ।
तप-संवर को करो अर्गला,
और क्षमा को दृढ प्राकार,
तन-मन-वचन गुप्ति से उसको,
शत्रुगणों से सतत बचाओ।
श्रद्धा को इक नगर बनाओ।।

×

मुनि बनकर तुम कर्म-कवच को,
तप-रूपी बाणों से भेदो।
बंधन काटो—समर जीत कर,
आत्मा को भवमुक्ति दिलाओ।।
श्रद्धा को इक नगर बनाओ।।

रत्न-त्रय-सम्पन्न जीव ही,
उत्तम 'तीर्थ' कहा जाता है।
वह त्रिरत्न की दिव्य तरी से,
भव-सागर को तर जाता है।।

अहिंसा सच्चं च अतेणगं च,
तत्तो य बम्भं अपरिग्गहं च।
पडिवज्जिया पंच महाव्वयाणि,
चरिज्ज धम्म जिणदेसियं विदू ॥

सव्वेसिमासमाणं, हिदय—
गब्भो व सव्वसत्थाणं।
सव्वेंसि वदगुणाण,
पिंडो सारो अहिंसा हु ॥

जावन्ति लोए पाणा,
तसा अदुव थावरा।
ते जाणमजाण वा,
ण हणे जो वि घायए ॥

पंच-महाव्रत सूत्र

अहिंसा, सत्य और अस्तेनक,
ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह–जान।
जिन प्रतिपादित पाँच महाव्रत,
पाले जीवनधर्म समान ॥

[अहिंसा सूत्र]

सभी आश्रमो का है हृदय अहिंसा,
सभी शास्त्रो का है गर्भ अहिंसा।
सभी व्रताचरणो का सार अहिंसा,
सभी गुणो का अन्तिम मर्म अहिंसा ॥

निखिल लोक मे
जितने त्रस–स्थावर प्राणी है,
जाने अथवा अनजाने मे उनकी हिंसा
न तो स्वय करना, न किसी से भी करवाना,
—यही अहिंसा का पालन है ॥

सय तिवायए पाणे,
अदुवन्नेहिं घायए।
हणन्तं वाणुजाणाइ,
वेरं वड्ढइ अप्पणो॥

जगनिस्सिएहिं भूएहिं,
तसनामेहिं थावरेहिं च।
णो तेसिमारभे दंडं,
मणसा वयसा कायसा चेव॥

अज्झत्थं सव्वओ सव्वं,
दिस्स पाणे पियायए।
ण हणं पाणिणो पाणे,
भयवेराओ उवरए॥

जो परिग्रही
स्वय किसी के प्राणो का व्यपरोपण करता,
अथवा किसी अन्य के हाथो करवाता है।
अथवा किसी हनन करने वाले का,
अनुमोदन करता है—वह तो जग मे,
अपने लिए वैर का ही सचय करता है।।

त्रस अथवा स्थावर नामो से,
जग मे जितने भूतजात हैं।
मन से, वाणी से, शरीर से, किसी तरह भी,
उन पर दड-प्रयोग निन्द्य है, अकरणीय है।।

अपने प्राण सभी को प्रिय है, इसे जानकर,
सकल विश्व के सब जीवो को,
अपने आत्मा के समान सप्राण मानकर।
भय से और वैर से उपरत सत्साधक को,
कभी किसी प्राणी के प्रिय प्राणो;
की हिंसा उचित नही है।।

सव्वाहि अणुजुत्तीहिं,
मतिमं पडिलेहिया ।
सव्वे अक्कन्तदुक्खा य,
अओ सव्वे ण हिंसया ।।

सबुज्झमाणे उ णरे मइमं,
पावाउ णं निवट्टएज्जा ।
हिंसप्पसूआइ दुहाइं मत्ता,
वेरानुबन्धीणि महब्भयाणि ।।

या सव्वभएसु,
सत्तु–मित्तेसु वा जगे ।
पाणाइवाय विरई,
जावज्जीवाए दुक्करं ।।

एयं खु णाणिणो सारं,
ज न हिंसति किंचण ।
अहिंसासमयं चेव
एयावन्तं वियाणिया ।।

मतिमन्तो का कार्य यही है—
सभी युक्तियो के मथन से,
सम्यक् ज्ञान जगाकर मन मे,
सब जीवो को दुःखो से भयभीत मानकर,
कभी किसी प्राणी को जग मे नही सताये ।।

हिसा से जन्मे दुखो को,
वैर-विवर्धक महाभयकर दुख मानकर,
जो मतिमान् मनस्वी,
सम्यग्-बोध हृदय मे जाग्रत करता,
वही विश्व मे पापकर्म से अपना परित्राण करता है ।।

भले शत्रु हो या कि मित्र हो,
सब जीवो के प्रति समता का पालन करना,
और सर्वविध हिसा से,
आजीवन विरत आचरण रखना बहुत कठिन है ।।

किसी जीव की जग मे हिंसा कभी न करना,
सकल-ज्ञान का सार यही है ।
यही परम विज्ञान,
अहिंसा का पावन सिद्धान्त यही है ।।

सव्वाहि अणुजुत्तीहिं,
मतिमं पडिलेहिया ।
सव्वे अक्कन्तदुक्खा य,
अओ सव्वे ण हिंसया ॥

संबुज्झमाणे उ णरे मइमं,
पावाउ ण निवट्टएज्जा ।
हिंसप्पसूआइ दुहाइं मत्ता,
वेरानुबन्धीणि महब्भयाणि ॥

समया सव्वभएसु,
सत्तु–मित्तेसु वा जगे ।
पाणाइवाय विरई,
जावज्जीवाए दुक्करं ॥

एयं खु णाणिणो सारं,
ज न हिंसति ि ण ।
अहिंसासमयं चेव
एयावन्तं वियाणिया ॥

मतिमन्तो का कार्य यही है–
सभी युक्तियो के मथन से,
सम्यक् ज्ञान जगाकर मन मे,
सब जीवो को दुःखो से भयभोत मानकर,
कभी किसी प्राणी को जग मे नही सताये ।।

हिसा से जन्मे दुखो को,
वैर-विवर्धक महाभयकर दुख मानकर,
जो मतिमान् मनस्वी,
सम्यग्-बोध हृदय मे जाग्रत करता,
वही विश्व मे पापकर्म से अपना परित्राण करता है ।।

भले शत्रु हो या कि मित्र हो,
सब जीवो के प्रति समता का पालन करना,
और सर्वविध हिसा से,
आजीवन विरत आचरण रखना बहुत कठिन है ।।

किसी जीव की जग मे हिंसा कभी न करना,
सकल-ज्ञान का सार यही है ।
यही परम विज्ञान,
अहिंसा का पावन सिद्धान्त यही है ।।

अप्पणट्ठा परट्ठा वा,
कोहा वा जइ वा भया।
हिंसगं न मुसं बूया,
नो वि अन्नं वयावए।।

गामे णयरे वा रण्णे,
वा पेच्छिऊण परमत्थं।
जो मुंचदि गहणभावं,
तिदियवदं होदि तस्सेव।

मूलमेअमहम्मस्स,
महादोस – समु ं।
तम्हा मेहुण–संसग्गि,
निग्गंथा वज्जयंति णं।।

[सत्य सूत्र]

स्वय अपने वास्ते या दूसरो के वास्ते,
क्रोध – भय – वश या किसी कारण।
कभी हिंसक झूठ खुद बोलो न बुलवाओ,
है यही तो सत्य व्रत का आचरण ।।

[अस्तेय-सूत्र]

ग्राम, नगर अथवा अरण्य मे,
किसी अभीष्ट वस्तु को लखकर।
ग्रहण-भाव का परित्याग ही,
तीजा व्रत अस्तेय कहाता ।।

[ब्रह्मचर्य-सूत्र]

है अधर्म का मूल, और है,
महादोष का मलिन निकेतन।
काम – सुरति का इसीलिए,
निर्ग्रन्थ किया करते है वर्जन ।।

अप्पडिकुट्ठं उवधिं,
अपत्थणिज्जं असजदजणेहिं ।
मुच्छादिजणणरहिद,
गेण्हदु समणो जदि वि अप्प ।।

संगनिमित्त मारइ.
भणइ अलीअं करेइ चोरिक्कं ।
सेवइ मेहुण–मुच्छ,
अप्परिमाणं कुणइ जीवो ।।

जहा दुमस्स पुप्फेसु,
भमरो आवियई रसं ।
ण य पुप्फ किलामेइ,
सो य पीणेइ अप्पयं ।।

गंथच्चाओ इंदिय—
णिवारणे अकुसो व हत्थिस्स ।
णयरस्स खाइया वि य,
इन्दियगुत्ती असंगत्तं ।।

जो ममत्व का भाव नही पैदा करती हो,
जो असंयमी लोगो द्वारा प्रार्थ्य नही है—
मात्र उसी अनिवार्य वस्तु का ग्रहण श्रेय है,
शेष अल्पतम का परिग्रह भी ग्राह्य नही है ।।

जीव परिग्रह का आकाक्षी बनकर हिंसाएँ करता है,
झूठ बोलता, चोरी करता, सुरत-भोग मे रत रहता है ।
अन्धी ममता से ही उसके इद्रियगण मूर्च्छित रहते हैं,
इन्ही पाच पापो की जड है, जिसको हम 'परिग्रह' कहते है ।।

जैसे सदय-भाव से भौरा करता फूलो से रसपान,
स्वयं तृप्त भी होता, फूलो को भी नही बनाता म्लान ।
वैसे ही श्रेयार्थी साधक नही जगत् को देता कष्ट,
अपरिग्रह से जीवन जीता और स्वय भी होता तुष्ट ।।

जैसे गज अंकुश से ही वश में आता है,
जैसे नगर-सुरक्षा खाई से होती है,
वैसे ही इन्द्रिय-निग्रह के हित,
अपरिग्रह आवश्यक है ।
अनासक्ति इन्द्रिय-गोपन है ।।

दो चेव जिणवरेहिं,
जाइ-जरा-मरण-विप्पमुक्केहिं ।
लोगम्मि पहा भणिया,
सुस्समण – सुसावगो वा वि ।।

दाणं पूया मुक्खं,
सावयधम्मे ण सावया तेण विणा ।
झाणाज्झयणं मुक्खं,
जइधम्मे तं विणा तहा सो वि ।।

संपत्तदंसणाई,
पइदियहं जइजणा सुणेई य ।
सामायारिं परमं,
जो खलु तं सावगं बिंति ।।

इत्थी जूयं मज्जं,
मिगव्व वयणे तहा फरुसया य ।
दंड त्तमत्थस्स,
दूसण सत्त वसणाइं ।।

जरा-मरण-भव-मुक्त जिनो ने,
किया द्विविध पथ का आदेश ।
उत्तम श्रावक और श्रमण के,
धर्मों का करके निर्देश ।।

श्रावकत्व के लिए मुख्यत
दान और पूजन प्रधान है ।
और श्रमण का धर्म मुख्यत
शास्त्रो का अध्ययन-ध्यान है ।।

जो यतियो से प्रतिदिन सुनता,
सामाचारी परम ध्यान से ।
वह सम्यग्-दर्शन-विशुद्ध-जन
'श्रावक' होता जिन-विधान से ।।

नारी, द्यूत, मद्य, मृगया, रति,
वाणी और दड की कटुता,
तथा अर्थ का दूषण मिलकर,
सात व्यसन जग मे कहलाते ।।

मज्जेण णरो अवसो,
कुणेइ कम्माणि णिंदणिज्जाइं।
इहलोए परलोए,
अणुहवइ अणंतयं दुक्खं॥

मासासणेण वड्ढइ,
दप्पो दप्पेण मज्जमहिलसइ।
जय पि रमइ तो तं,
पि वणिए पाउणइ दोसे॥

पाणिवह–मुसावाए,
अदत्त-परदार-नियमणेहिं च।
अपरिमिइच्छाओऽवि य,
अणुव्वयाइं विरमणाइं॥

वजिज्जा तेनाहड,
तक्करजोगं विरुद्धरज्जं च।
कूड–तुल–कूडमाणं,
तप्पडिरूवं च ववहारं॥

मद्य-पान से विवश हुआ नर,
निन्दित कर्मो को अपनाता।
और उभयलोको मे शापित,
सदा अनन्त दुख है पाता ।।

मासाशन है दर्प वढाता,
दर्प मद्य की चाह जगाता,
वही द्यूत का व्यसन लगाता,
और मनुज दोषो का भाजन,
बनकर अपना जन्म गँवाता ।।

जीव-हनन से, मृषा वचन से,
अप्रदत्त, पर-दार गमन से,
अमित परिग्रह की इच्छा से,
विरति-भाव 'अणुव्रत' कहलाता ।।

चोरी से लाई चीजो का करना वर्जन,
कर-चोरी या तस्कर का करना न आचरण।
जाली तुला और मुद्राएँ नही बनाना।
राज्य-विरुद्ध कर्म को कभी नही अपनाना ।।

नाण-दसण-सपण्णं,
संजमे य तवे रय।
एवंगुण-समाउत्त,
संजयं साहुमालवे॥

निम्ममो निरहंकारो,
निस्संगो चत्तगोरवो।
समो य सव्वभूएसु.
तसेसु थावरेसु अ॥

गुणेहि साहू अगुणेहिऽसाहू,
गिण्हाहि साहू–गुण मुंचऽसाहू।
वियाणिया अप्पगमप्पएणं,
जो रागदोसेहिं समो स पुज्जो॥

विवित्तसेज्जासण–जंतियाणं,
ओमाऽसणाण दमिइंदियाणं।
न रागसत्तू धरिसेइ चित्तं,
पराइओ वाहिरिवोसहेहिं॥

ज्ञान-दृष्टि से जो समृद्ध है,
सयम-तप मे सदा निरत है।
वही साधु है, वही पूज्य है,
जो उत्तम गुण से मडित है।।

जो निस्सग, त्यक्त-गौरव है,
जो निर्मम, निरहकारी है।
त्रस-स्थावर भूतो के प्रति,
समदर्शी-'श्रमण' नामधारी है।।

साधु गुणो से कहलाता है, अगुणो से इसके विपरीत।
श्रमण गुणो को धारण करता, तजता है अगुणो की रीत।
जो आत्मा से ही आत्मा का करता है निष्ठित विज्ञान।
रागद्वेष मे जो सम रहता, वही पूज्य है श्रमण महान्।।

जो विविक्त शय्या-आसन के सेवन मे रहता है नियमित,
जो स्वल्पाहारी है, जिसके इन्द्रियगण है दमित नियन्त्रित,
उसके विमल चित्त को कोई राग न दूषित कर पाता है।
जैसे औषधि को न कभी भी रोग पराजित कर पाता है।।

ण वि मुंडियेण समणो,
ण ओंकारेण बंभणो।
ण मुणी रण्णवासेणं,
कुसचीरेण ण तावसो।।

समयाए समणो होइ,
बंभचेरेण बंभणो।
नाणेण उ मुणी होइ,
तवेण होइ त ो।।

केवल मुण्डित मस्तक से ही,
कोई श्रमण नही बन जाता।
केवल ओम् ओम् जपने से,
कोई ब्राह्मण नही कहाता।
केवल जगल मे रहने से,
मुनि कोई कब है बन पाया ?
कुशा और चीवर धारण से,
तापस कोई कब कहलाया ??

समता-भाव बसाकर मन मे,
शमन करे, वह श्रमण कहाये।
ब्राह्मण वही कि जो तन-मन से,
ब्रह्मचर्य का नियम निभाये।
मोक्ष-मार्ग का मनन करे जो,
जग उसको ही मुनि कहता है।
तापस वही सदा निष्ठा से,
जो तप मे तत्पर रहता है ॥

कम्मुणा बभणो होइ,
कम्मुणा होइ खत्तिओ।
वइसो कम्मुणा होइ,
सुद्दो हवइ कम्मुणा॥

माहण-सुत्तं

जो ण सज्जइ आगन्तुं,
पव्वयन्तो ण सोयई।
रमइ अज्जवयणम्मि,
तं वयं बूम माहण॥

जायरूवं जहामट्ठं,
निद्धन्त-मल-पावगं।
राग-दोस भयाईयं,
तं वयं बूम माहणं॥

नही जन्म से, नही नाम से,
नही किसी के ये नाते है।
ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र सब,
कर्मो से जाने जाते है॥

ब्राह्मण-सूत्र

जो घर मे रहकर भी, स्वजनो
मे आसक्त नही हो पाये,
जो सन्यास ग्रहण करने पर
शोकमग्न मन को न बनाये।
आर्यजनो के श्रेष्ठ वचन-मणि,
जिसके कठहार रहते है,
जो हो गुण-वैभव का स्वामी
उसको हम ब्राह्मण कहते है॥

ज्वाला मे तपने पर निर्मल
सोना और निखर जाता है,
और कसौटी पर कसने पर
सच्चा कुन्दन कहलाता है।
ऐसे सच्चे सोने के गुण
जिसके अन्तस् मे रहते है,
राग-द्वेष-भय मुक्त रहे जो
उसको हम ब्राह्मण कहते है॥

दिव्व–माणुस–तेरिच्छं,
जो ण सेवइ मेहुण ।
मणसा काय वक्केणं,
त वयं बूम माहणं ।।

जहा पोम्मं जले जाय,
नोपलिप्पइ वारिणा ।
एव अलित्तं कामेंहि,
तं वय बूम माहण ।।

दिव्य, मानुषी या कि पाशवी,

काम-वासना से बचता है।

किसी रूप मे भी जो मानव,

सुरताचरण नही करता है।

काम-पक से जिसके तन-मन-

वचन सदैव बचे रहते है।

निष्कलंक जिसका चरित्र है,

उसको हम ब्राह्मण कहते है॥

जल मे कमल जन्म लेता, पर

जल से लिप्त नही होता है,

विषयो के मल से योगी का,

मन आसक्त नही होता है।

जिसके तन-मन-वचन वासनाओ

से अनासक्त रहते हैं,

जो निर्लिप्त रहे शतदल-सा

उसको हम ब्राह्मण कहते हैं॥

तवस्सियं किसं दन्त,
अवचिय-मस-सोणियं ।
सुव्वय पत्त-निव्वाणं,
त वयं बूम माहणं ।।

त णे वियाणेत्ता,
संगहेण य थावरे ।
जो ण हिंसइ तिविहेणं,
त वयं बूम माहण ।।

तप की वेदी पर जो तन का
रक्त-मास अर्पित कर आये,
कठिन साधना के पथ चलकर
जो खुद को कृशकाय बनाये।
ऐसा व्रती, कि जिसके वश मे
सारे इन्द्रियगरण रहते हैं,
जो निर्वाण-प्राप्त तापस है
उसको हम ब्राह्मण कहते है।।

जो स्थावर-जगम जीवो का,
ज्ञान हृदय मे करता धारण।
जो मन वचन और काया से,
कभी न करता हिंस्र आचरण।
त्रिविध रूप हिंसा–प्रवृत्ति के,
जिससे सदा दूर रहते हैं,
जो न कभी हिंसा करता है,
उसको हम ब्राह्मण कहते है।।

कोहा वा जइ वा हासा,
लोहा वा जइ वा भया।
मुस न वयई जो उ,
त वय बूम माहणं॥

जहित्ता पुव्वसंजोगं,
नाइसगे य बंधवे।
जो ण सज्जइ भोगेसु,
तं वय बूम माहणं॥

कभी क्रोध के वश मे आकर
वाणी का सयम न तोडता,
या कि कभी परिहास-वचन को
भी मिथ्या से नही जोडता।
जिसके सच्चे वचन, लोभ
या भय से अनभिभूत रहते है,
मृषा–वचन जो नही बोलता,
उसको हम ब्राह्मण कहते है ।।

जाति–बन्धु स्वजनो से जिसका,
मन ससर्ग-रहित रहता है,
जो माया-ममता के कारक,
सूत्रो का वर्जन करता है।
भुक्तोज्झित भोगो मे जिसके,
भाव असज्जित ही रहते है,
जो निर्लिप्त विषय-त्यागी है,
उसको हम ब्राह्मण कहते है ।।

अलोलुय मुहाजीविं,
अणगार अकिंचणं।
असंसत्तं गिहत्थेसु,
तं वयं बूम माहणं॥

किं काहदि वणवासो,
कायकलेसो विचित्त उववासो।
अज्झयणमोणपहुदी,
समदारहियस्स समणस्स॥

'साँसे हैं, तब तक जीना है',
जिसका यह जीवन-दर्शन है।
जो अनगार, स्वय मे केन्द्रित,
निर्लोलुप है, निष्किञ्चन है॥
जिसके भाव सदा घर-बारी
जन से अनासक्त रहते है।
जो भव-त्यागी साधु पुरुष है,
उसको हम 'माहण' कहते हैं॥

चाहे दे ले कष्ट देह को,
या कर ले वनवास।
मौन धरे, अध्ययन करे,
या रखे विविध उपवास॥
जब तक समता-भाव नही है,
इनका क्या है अर्थ ?
समता-रहित श्रमण का सारा,
नियम - धर्म है व्यर्थ॥

संथार-सेज्जासणभत्तपाणे,
अप्पिच्छया अइलाभे वि संते ।
एवम्मपाणमभितोसएज्जा,
संतोसपाहन्नरए स पुज्जो ।।

कोहो य माणो य अणिग्गहीया,
माया य लोभो य पवड्ढमाणा ।
चत्तारि एए कसिणा कसाया,
सिंचन्ति मूलाइं पुणब्भवस्स ।।

विरया परिग्गहाओ अपरिमिआओ अणंततण्हाओ,
बहुदोस-सकुलाओ नरयगइगमण-पंथाओ ।
खित्ताइ-हिरण्णाई धणाइ दुपयाइ कुवियगस्स तहा,
सम्मं विसुद्धचित्तो न पमाणाइक्कम कुज्जा ।।

सुवण्ण-रूप्पस्स उ पव्वया भवे,
सिया हु केलाससमा असंखया ।
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि,
इच्छा हु आगाससमा अणंतिया ।

सुख–शय्या, आवास और आसन, भोजन, जल–
तनिक चाहने पर भी यदि मिल जायँ विपुल,
फिर भी जो करता न अधिक का कभी ग्रहण
वह सन्तोषी है समाज का सदा पूज्यजन ।।

काले चार कषाय – असयत
क्रोध, लोभ, माया, अभिमान ।
पुनर्जन्म – तरु के सिंचन को
ये है कुत्सित नीर समान ।।

अमित परिग्रह है अनत तृष्णा का कारण,
दोषो का है कोष, नरकगति का है वाहन ।
इसीलिए गृह-स्वर्ण - रजत-पशु-भडारण से,
सदा बचे श्रावक प्रमाण के अतिक्रमण से ।।

अनगिनती कैलास – सदृश उत्तुग विशाल,
सोने – चाँदी के बन जाएँ शैल महान ।
फिर भी लोभी का मन उनसे नही भरेगा,
लोभी की इच्छा अनन्त है व्योम-समान ।।

जे पावकम्मे हि धणं मणुस्सा,
समाययन्ति अमयं गहाय।
पहाय ते पासपयट्टिये नरे,
वेराणुबद्धा नरय उवेन्ति ।।

वित्तेण ताणं ण लभे पमत्ते,
इमम्मि लोए अदुवा परत्था।
दीवप्पणट्ठे व अणंतमोहे,
नेयाउयं दट्ठुमदट्ठुमेव ।।

जो जन अमृत समझकर धन का
पाप-कर्म से सचय करते।
छल – चोरी – मिथ्या – भाषण से,
अपनी सिर्फ तिजोरी भरते।
उनके पाप उन्ही की बेडी
बन, समाज से वैर बढाते।
धन रह जाता, पर वे जीवन
मे ही नारकीय गति पाते।।

पाप-कर्म से धन-सचय कर,
नर दुःखो से त्राण न पाता,
किसी लोक मे भी पहुँचे,
पर उसका पाप उसी को खाता।
जैसे दीपक बुझ जाने पर,
भवन अँधेरे मे खोता है,
वैसे नर विवेक को खोकर,
नेत्रसहित अन्धा होता है।।

सन्निहिं च न कुवेज्जा,
लेवमायाए संजए।
पक्खी पत्तं ादाय,
निरवेक्खो परिव्वए॥

पाणिवह-मुसावाया,
अदत्त-मेहुण-परिग्गहा विरओ।
राई-भोयण-विरओ,
जीवो भवइ अणासवो॥

एगमेगे खलु जीवे,
अई अद्धाए असई उच्चागोए।
असई नीचागोए,
नो हीणे नो अइरित्ते-इतिसंखाए
के गोयावाई ? के माणावाई ??

चउहिं ठाणेहिं जीवा,
णेरतियत्ताए कम्मं पकरेंति त जहा।
महारभताते महापरिग्गहयाते,
पंचिंदियवहेण कुणिमाहारेण॥

उदरपूर्ति के लिए सदा निस्सग भाव से,
जैसे पक्षी घास-पात का चुग्गा लाता।
वैसे ही निर्लेप सयमीजन समाज मे,
सग्रह के पापो से खुद को सदा बचाता ।।

जीव - हनन से, मृषावचन से,
अप्रदत्त से, रति-मैथुन से।
परिग्रहो से, निशिभोजन से,
जो भी जीव विरत हो जाता—
वही अनास्रव है बन पाता ।।

कितनी बार जीव धरती पर अपने क्रम से,
उच्च-नीच गोत्रो मे जन्म लिया करता है—
इसका जिसे ज्ञान है—उसकी शुद्ध दृष्टि मे,
कौन हीन है—कौन उच्च है ?
कब वह ऐसे भेदभाव को मन मे स्थान दिया करता है ?

चार कारणो से नर नरकलोक मे जाते—
महारम्भ से, महा-परिग्रह के साधन से,
पचेन्द्रिय जीवो के प्राण-व्यपरोपण से,
चौथे, मानुष होकर आमिष के भक्षण से ।।

पाओसणाणादिसु णत्थि मोक्खो,
खारस्स लोणस्स अणासएण।
ते मज्ज-मंसं लसुणं च भोच्चा,
अनत्थवासं परिकप्पयंति ॥

पाणे य नाइवाएज्जा,
अदिन्नं पि य नायए।
साइयं न मुसं बूया,
एस धम्मो वुसीमओ ॥

देहादिसंगरहिओ,
माण- एहिं सयलपरिचत्तो।
अप्पा अप्पम्मि रओ,
स भावलिंगी हवे साहू ॥

खामणा सुत्तं

सव्वस्स जीवरासिस्स,
भावओ धम्मनिहिअनिअचित्तो।
सव्वे खमावइत्ता,
खमामि सव्वस्स अहयं पि ॥

चाहे त्याग करे लवणादिक, चाहे करले स्नान,
कुछ भी करे, रहेगे हरदम वे अनर्थ की खान।
मद्य-मास-लहसुन-भक्षण की जिनको पडी कुटेव,
उनको मोक्ष न मिल पाएगा जग मे निश्चयमेव ॥

कभी किसी के प्राणो का अतिपात न करना,
अप्रदत्त चीजो का भी आदान न करना।
कभी कपट से युक्त और मिथ्या न बोलना,
आत्मनिग्रही सत्पुरुषो का यही धर्म है ॥

जो देहादि सग से विरहित,
मान-कषायो से है मुक्त।
आत्माराम भावलिगी वह,
श्रमण साधुता से है युक्त ॥

क्षामणा-सूत्र

धर्मनिहित मन से, मैं जग के सब जीवो से,
करता हू निज अपराधो की क्षमा-याचना।
और क्षमा करता हू सबके अपराधो को,
शान्तिमयी है शुद्ध हृदय की यही क्षामणा ॥

सव्वस्स समणसंघस्स,
भगवओ अंजलिं करिअ सीसे।
सव्वे खमइत्ता,
खमामि सव्वं अहयं पि॥

आयरिए उवज्झाए,
सीसे साहम्मिए कुलगणे य।
जे मे केइ कसाया,
सव्वे तिविहेण खामेमि॥

खामेमि सव्वे जीवा,
सव्वे जीवा खमतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु,
वेरं मज्झं ण केणइ॥

जं जं मणेण बद्धं,
जं जं वायाए भासियं पावं।
जं जं काएण कयं,
मिच्छा मि दुक्कड तस्स॥

पूजनीय प्रभु श्रमण-सघ को हाथ जोडकर,
शीश झुकाकर करता हू मै क्षमा-प्रार्थना।
सबसे क्षमा माँगकर, करता क्षमा सभी को,
उभयमयी है शुद्ध हृदय की यही क्षामणा॥

पूजनीय आचार्यो और उपाध्यायो के,
उनके शिष्यो, सहधर्मीजन और
कुलगणो के प्रति, जो मेरे कषाय है,
जो कुछ भी मेरे दुष्कृत है,
आज उन्ही की उन सबसे ही
तन से, मन से और वचन से
करता हू मैं क्षमा-याचना॥

क्षमादान करता हूं मैं सारे जीवों को,
वे सब मेरे अपराधो को क्षमादान दे।
प्राणिमात्र से मैत्री मेरा परम धर्म है,
किसी जीव से वैर नही है मेरे मन मे॥

जो जो पाप उठे है मन में,
मुख ने जो दुर्वचन सुनाये।
जो जो दुष्कृत किये देह ने,
वह सब कुछ मिथ्या हो जाये॥

सव्वस्स समणसंघस्स,
भगवओ अंजलिं करिअ सीसे।
सव्वे विइत्ता,
खमामि सव अहयं पि॥

आयरिए उवज्झाए,
सीसे साहम्मिए कुलगणे य।
जे मे केइ कसाया,
सव्वे तिविहेण खामेमि॥

खामेमि सव्वे जीवा,
सव्वे जीवा खमंतु मे।
मित्ती मे सव्वभूएसु,
वेरं मज्झं ण केणइ॥

जं जं मणेण बद्धं,
जं जं वायाए भासियं।
जं जं काएण कयं,
मिच्छा मि दुक्कड तस्स॥

पूजनीय प्रभु श्रमण-सघ को हाथ जोडकर,
शीश झुकाकर करता हू मै क्षमा-प्रार्थना।
सबसे क्षमा माँगकर, करता क्षमा सभी को,
उभयमयी है शुद्ध हृदय की यही क्षामणा॥

पूजनीय आचार्यो और उपाध्यायो के,
उनके शिष्यो, सहधर्मीजन और
कुलगणो के प्रति, जो मेरे कषाय है,
जो कुछ भी मेरे दुष्कृत है,
आज उन्ही को उन सबसे ही
तन से, मन से और वचन से
करता हू मैं क्षमा-याचना॥

क्षमादान करता हूं मैं सारे जीवो को,
वे सब मेरे अपराधो को क्षमादान दे।
प्राणिमात्र से मैत्री मेरा परम धर्म है,
किसी जीव से वैर नही है मेरे मन मे॥

जो जो पाप उठे हैं मन में,
मुख ने जो दुर्वचन सुनाये।
जो जो दुष्कृत किये देह ने,
वह सब कुछ मिथ्या हो जाये॥

जइ किंचि पमाएणं,

न सुट्ठु भे वट्टियं भए पुव्वि ।

तं मे खामेमि अहं,

निस्सल्लो निक्कसाओ अ ॥

अगर आपके प्रति मैंने किञ्चित् प्रमाद-वश,
नही किया हो उचित आचरण कभी कही पर।
तो निःशल्य कषायरहित्त हो शुद्धभाव से,
क्षमा-याचना करता हू मै आज आपसे ॥

चिन्त –प

चत्तर - ७

हा! जह मोहियमइणा,
सुग्गइमग्गं अजाणमाणेणं।
भीमे भवकंतारे,
सुचिर भमियं भयंकरम्मि ॥

वाहि-जर-मरण-मयरो,
निरंतरुप्पत्ति-नीर-निकुरंबो।
परिणाम-दारुणदुहो,
अहो दुरतो भवसमुद्दो ॥

सरीरमाहु नाव त्ति,
जीवो वुच्चइ नाविओ।
ससारो अण्णवो वुत्तो,
जं तरन्ति महेसिणो ॥

र ार्थ- ूत्र

हन्त ! सुगति-पथ से अनभिज्ञ,
अब तक मूढ-भाव-आक्रान्त।
भीम भयकर भवारण्य मे,
रहा भटकता होकर भ्रान्त ।।

जरा-मरण-व्याधि-स्वरूप हैं मकर जहाँ पर,
जहाँ निरंतर जन्म-रूप पानी अनन्त है।
केवल दारुण-दुःख सदा परिणति है जिसकी,
ऐसा यह भवसागर भीषण है, दुरन्त है ।।

भव सागर है, देह नाव है,
और जीव नाविक कहलाते।
इस दुस्तर सागर को ऋषिवर,
तत्त्व-ज्ञान द्वारा तर जाते ।।

लोगो अकिट्टिमो खलु,
अणाइणिहणो सहाव-णिव्वत्तो ।
जीवाजीवहिं फुडो,
सव्वागासावयवो णिच्चो ।।

जीवाऽजीवा य बंधो य,
पुण्णं पावाऽऽसवो तहा ।
सवरो निज्जरा मोक्खो,
संतेए तहिया नव ।।

उ गुणाण धामं,
सव्व-दव्वाण उत्तमं दव्वं ।
तच्चाण परं तच्च,
जीवं जाणेह णिच्छयदो ।।

सुह-दुक्खजाणणा वा,
हिद-परियम्मं च अहिदभीरुत्त ।
जस्स ण विज्जदि णिच्च,
तं समणा विंति अज्जीवं ।।

लोक अकृत्रिम है, स्वभाव-निर्मित है,
और अनादि-निधन है।
सर्वाकाश-भाग है, जीवाजीव-व्याप्त है,
नित्य - सृजन है॥

जीव, अजीव, आस्रव, वध,
पाप, पुण्य, सवर - तथ्यार्थ।
तथा निर्जरा, मोक्ष-जैनमत,
मे ये नौ होते तत्त्वार्थ॥

उत्तम गुण का धाम जीव है,
सब द्रव्यो मे वह उत्तम है।
निश्चयत. यह जानो मन में,
वह तत्त्वो का तत्त्व परम है॥

हित के प्रति व्यवसाय न जिसमें,
औ' सुख-दुख का ज्ञान नही है।
वह अजीव है, जिसे अहित के
लिए भीति का भान नही है॥

धम्मो अहम्मो आगासं,
कालो पुग्गल जन्तवो।
एस लोगो त्ति पण्णत्तो,
जिणेहिं वरदंसिहि॥

आगासकालजीवा,
धम्माधम्मा य मुत्तिपरिहीणा।
मुत्तं पुग्गलदव्व,
जीवो खलु चेतणो तेसु॥

वण्ण-रस-गंध-फासे,
पूरण-गलणाइ सव्वकालम्हि।
खंद इव कुणमाणा,
परमाणु पुग्गला तम्हा॥

ण य गच्छदि धम्मत्थी,
गमणं ण करेदि अन्नदवियस्स।
हवदि गती स प्पसरो,
जीवाणं पुग्गलाणं च॥

पुद्गल, धर्म, अधर्म और–
आकाश, काल–ये द्रव्य अजीव।
जिनमत मे षड्-द्रव्य लोक का,
छठा तत्त्व होता है जीव।।

पुद्गल द्रव्य मूर्तिक, बाकी,
पाँचो द्रव्य अमूर्तिक होते।
चेतन केवल जीव द्रव्य है,
शेष अजीव अचेतन होते।।

स्कन्ध और परमाणु रूप जो,
पूरण-गलन क्रिया से युत है।
वह 'पुद्गल' है – सर्वकाल मे,
स्पर्श-रूप-रस-गन्धान्वित है।।

जो न गमन करता, न कराता,
गति का जो है तटस्थ कारण।
पुद्गल जीवो की गामकता,
है 'धर्मास्तिकाय' का लक्षण।।

जह हवदि धम्मदव्व,
तह तं जाणेह दव्वमधम्मक्खं
ठिदि-किरया-जुत्ताणं
कारणभूद तु पुढवीव ।।

चेयणरहियममुत्तं,
अवगाहण-लक्खणं च सव्वगयं ।
लोयालोय-विभेयं,
तं णहदव्वं जिणुद्दिट्ठं ।।

पास-रस-गंध-वण्ण-
व्वदिरित्तो अगुरुलहुग-संजुत्तो ।
वत्तण-लक्खण-कलियं,
कालसरूवं इमं होदि ।।

पाणेहिं चदुहिं जीवदि,
जीवस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं ।
सो जीवो पाणा पुण,
बलमिंदियमाउ उस्सासो ।।

धर्म-द्रव्य-सी ही तटस्थता,
है 'अधर्म' का तात्त्विक लक्षण ।
पृथ्वी-सम ही जीव, पुद्गलो की
स्थिति मे जो बनता कारण ॥

है 'आकाश' अचेतन, व्यापक,
अवगाहन-लक्षण अमूर्त है ।
लोक-अलोक भेद से ही वह,
द्विविध जिनागम मे वर्णित है ॥

स्पर्श-रूप-रस-गध-रहित है,
अगुरु-लघुक-गुण से मडित है ।
वर्तन-लक्षण-कलित द्रव्य जो,
वही 'काल' पद से भाषित है ॥

बल-इन्द्रिय-उच्छ्वास-आयु-मय,
प्राणो से चिति पाता है ।
जो जीता है, जिया, जियेगा,
वही 'जीव' कहलाता है ॥

जह हवदि धम्मदव्व,
तह तं जाणेह दव्वमधम्मक्खं
ठिदि-किरया-जुत्ताणं
कारणभूद तु पुढवीव ।।

चेयणरहियममुत्तं,
अवगाहण-लक्खणं च सव्वगयं ।
लोयालोय-विभेयं,
तं णहदव्वं जिणुद्दिट्ठं ।।

पास-रस-गंध-वण्ण-
व्वदिरित्तो अगुरुलहुग-संजुत्तो ।
वत्तण-लक्खण-कलियं,
काल इमं होदि ।।

पाणेहिं चदुहिं जीवदि,
जीवस्सदि जो हु जीविदो पुव्वं ।
सो जीवो पाणा पुण,
बलमिंदियमाउ उस्सासो ।।

धर्म-द्रव्य-सी ही तटस्थता,
है 'अधर्म' का तात्त्विक लक्षण ।
पृथ्वी-सम ही जीव, पुद्गलो की
स्थिति मे जो बनता कारण ।।

है 'आकाश' अचेतन, व्यापक,
अवगाहन-लक्षण अमूर्त है ।
लोक-अलोक भेद से ही वह,
द्विविध जिनागम मे वर्णित है ।।

स्पर्श-रूप-रस-गध-रहित है,
अगुरु-लघुक-गुण से मडित है ।
वर्तन-लक्षण-कलित द्रव्य जो,
वही 'काल' पद से भाषित है ।।

बल-इन्द्रिय-उच्छ्वास-आयु-मय,
प्राणो से चिति पाता है ।
जो जीता है, जिया, जियेगा,
वही 'जीव' कहलाता है ।।

उवश्रोग-लक्खणमणाइ-
निहण-मत्थंतर सरीराश्रो।
जीवमरूविं कारिं,
भोयं च सयस्स कम्मस्स ॥

पुढवि-जल-तेय-वाऊ,
वणप्फदी विविह-थावरेइंदी।
बिग-तिग-चदु-पंचक्खा,
तसजीवा होंति ˙ ादी ॥

ससरीरा श्ररहंता,
केवल-णाणेण मुणिय-सयलत्था।
णाण-सरीरा सिद्धा,
सव्वुत्तम - सुक्ख - संपत्ता ॥

जीवा हवंति तिविहा,
बहिरप्पा तह य श्रंतरप्पा य।
परमप्पा वि य दुविहा,
श्ररहंता तह य सिद्धा य ॥

'जीव' देह से भिन्न, अनादि-निधन है,
वह अरूप-उपयोग-लक्षणान्वित है।
है स्वकीय कर्मो का कर्ता-भोक्ता,
वह स्वदेह-परिमाण ऊर्ध्वगतियुत है ।।

भूमि-तेज-जल-वायु-वनस्पतिकायिक,
एकेन्द्रिय–स्थावर है जाने जाते ।
द्वि–त्रि–चतु -पच–इन्द्रिय शखादिक,
ससारी जीवो मे 'त्रस' कहलाते ।।

हैं सशरीरी 'अर्हत्' केवलज्ञानी,
निज चरणो से जग को तीर्थ बनाते ।
है भवमुक्त श्रेष्ठ सुख के अधिगामी,
ज्ञान–शरीरी जीव 'सिद्ध' कहलाते ।।

जीवात्मा के तीन भेद है—
'बहिरात्मा' फिर 'अन्तरात्मा' ।
अर्हत् और सिद्ध भेदो से,
होता चरम भेद 'परमात्मा' ।।

ाणि बहिरप्पा,
अंतरप्पा हु अप्पसकप्पो।
कम्म-कलंक-विमुक्को,
परमप्पा भण्णए देवो॥

आरुहवि अतरप्पा,
बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण।
झाइज्जइ परमप्पा,
उवइट्ठं जिण-वरिंदेहिं॥

रागो य दोसो वि य कम्मवीयं,
कम्मं च मोह-प्पभव वयंति।
कम्म च जाईमरणस्स मूलं,
दुक्खं च जाईमरण वयंति॥

णाणस्सावरणिज्जं दंसणावरण तहा,
वेयणिज्जं तहा मोहं आउकम्मं तहेव य।
नामकम्म च गोय च अतरायं तहेव य,
एवमेयाइं कम्माइं अट्ठेव उ समासओ॥

बहिरात्मा कहते है अक्षगणो को,
और आत्म-सकल्प अन्तरात्मा है।
आत्म-साधना-साध्य, कर्म-पको से,
निष्कलंक निर्बन्धित परमात्मा है ।।

जिन-वचनो के रत्नो का सचय करके तुम,
मन से, वचन-काय से त्यागो बहिरात्मा को।
और अन्तरात्मा मे सम्यक् आरोहण कर,
शुद्ध-भाव होकर फिर ध्याओ परमात्मा को ।।

राग-द्वेष है बीज कर्म के,
मोह कर्म का प्रभव कहाता।
जन्म-मरण का मूल कर्म है,
भव-बधन है दुख-प्रदाता ।।

ज्ञान-दर्शनावरण-द्विविध हैं,
वेदनीय हैं, मोहनीय है।
आयु, नाम गोत्रान्तराय—ये
आठ कर्म उल्लेखनीय हैं ।।

आसवदारेहिं सया,
हिंसाईएहिं सवइ ।
जइ नावाइ विणासो,
छिद्दे हि जलं उयहिमज्झे ।।

भावेण जेण जीवो,
पेच्छदि जाणादि आगद विसये ।
गच्छंति कम्मभावं,
ण हि ते जीवेण परिणमिदा ।।

भोगामिसदोसविसन्ने,
हिय-निस्सेयस-बुद्धिवोच्चत्थे ।
बाले य मन्दिए मूढे,
बज्झइ मच्छिया व खेलम्मि ।।

सा वयसा मत्ते,
वित्ते गिद्धे य इत्थिसु ।
दुहओ मलं संचिणइ,
सिसुणागु व्व मट्टियं ।।

'आस्रव' है ऐसा द्वार, कि जिससे होकर,
हिसादिक कर्मो का आस्रव झरता है।
सागर-गत नौका मे छिद्रो से होकर,
जैसे विध्वसक जल-प्रवाह भरता है॥

राग-द्वेष-भावो से हो सपृक्त,
इन्द्रिय-विषयागत द्रव्यो को जब जीव,
जानता-देखता, हो उनमे उपरक्त।
भावो मे उसका यह बरवस उपराग,
परिणत करता नूतन कर्मो का बध।
यह 'बध'-रूप जैनागम मे है उक्त॥

आत्मा के दूषक भोगामिष मे डूबा,
हित-नि:श्रेयस-मतिहीन, मूढ अज्ञानी।
है कर्म-जाल मे ऐसे ही बँध जाता,
जैसे श्लेष्मा मे हो मक्खी लिपटानी॥

बन नारी औ' धन का लोभी, तन और वचन से मतवाला,
जपता रहता है राग-द्वेष के दुहरे मनको की माला।
इस तरह जीव निज कर्मो के मल ही का सचय करता है,
जिस तरह केचुआ मुख-तन से मिट्टी का सचय करता है॥

मिच्छत्ताविरदी वि य,
कसाय जोगा य आसवा होंति।
संजम-विराय-दंसण-
जोगाभावो य संवरओ ॥

रुंधिय-छिद्दसहस्से,
जलजाणे जह जल तु णासवदि।
मिच्छत्ताई-अभावे,
तह जीवे सवरो होइ ॥

जहा महातलायस्स सन्निरुद्धे जलागमे,
उस्सिचणाए तवणाए कमेण सोसणा भवे।
एवं तु संजयस्सावि पावकम्मे-निरासवे,
भवकोडी-सचियं कम्मं तवसा निज्जरिज्जइ ॥

णिव्वाण-सुत्तं

न य संसारम्मि सुहं,
जाइ-जरा-मरण-दुक्खगहियस्स।
जीवस्स अत्थि जम्हा,
तम्हा मुक्खो उवादेवो ॥

मिथ्यापन, अविरति, कषाय औ' योग–
ये चार हेतु है आस्रव के विख्यात।
सयम, विराग, दर्शन औ' योगाभाव–
सवर के चार हेतु है सम्यग्ज्ञात ॥

जिस तरह हजारो छिद्र बद करने पर,
नौका मे जल का नही प्रसर होता है।
वैसे ही आस्रव–द्वार रोक देने से,
जीवो मे पापमुक्त 'सवर' होता है ॥

पानी आना रुकने, उलीचने, तपने
से जैसे कोई ताल शुष्क होता है।
उस तरह अनास्रव सयमधन का तप से
जन्मो का सचित कर्म जीर्ण होता है ॥
अघ-कर्म जहाँ निर्जीर्ण हुआ करते हैं।
जिन उसे 'निर्जरा' तत्व कहा करते हैं ॥

निर्वाण–सूत्र

जन्म–जरा औ' मरण दुःख से
ग्रस्त लोक मे कहाँ श्रेय है?
अत दुख से त्रस्त जीव के
लिए मोक्ष ही उपादेय है ॥

कम्ममल–विप्पमुक्को,
उड्ढं लोगस्स अतमधिगन्ता।
सो सव्वणाणदरिसी,
लहदि सुहमणिंदियमणंतं॥

ण वि दुक्खं ण वि सुक्खं,
ण वि पीडा णेव विज्जदे बाहा।
ण वि मरणं ण वि जणणं,
तत्थेव य होइ णिव्वाणं॥

णिव्वाणं ति ाहंति,
सिद्धी लोगग्गमेव य।
खेमं सिवं अणावाहं,
जं चरन्ति महेसिणो॥

सव्वग्गंथ–विमुक्को,
सीईभूओ पसंतचित्तो अ।
जं पावइ मुत्तिसुहं,
न चक्कवट्टी वि तं लहइ॥

धर्म चक्र से बध-बेडियो का मुमुक्षु भजन करता है,
कर्म-मलों से मुक्त दशा मे आत्मा ऊर्ध्वगमन करता है।
और पहुँच लोकान्तदेश मे सर्वज्ञान-द्रष्टा पद पाकर,
वही अनन्त अतीन्द्रिय सुख का निराबाध सेवन करता है ।।

जहाँ न सुख है, औ' न दुख है,
जन्म-मरण का नही विधान।
जहा न पीडा और न बाधा,
वही – वही होता निर्वाण ।।

है निर्वाण नाम उस पद का,
जिसे प्राप्त करते महर्षिजन।
जो अबाध, शिव, अनाबाध है,
सिद्ध, क्षेम, लोकाग्र, सनातन ।।

शीतीभूत, ग्रथियो से परिमोचित,
पूर्ण-शान्त-मन मुनि जो सुख पाता है।
वैसा मुक्ति-भरा सुख कभी जगत् मे,
क्या किसी चक्रवर्ती को मिल पाता है ??

———

णेगं - त्तं

जेण विणा लोगस्स वि,
ववहारो सव्वहा न निव्वहइ ।
तस्स भुवणेकगुरुणो,
णमो अणेगंतवायस्स ।।

जो ण पमाण-णयेहि,
णिक्खेवेणं णिरिक्खदे अत्थं ।
तस्साजुत्तं जुत्तं,
जुत्तमजुत्तं च पडिहादि ।।

णाणं होदि पमाणं,
णओ वि णादुस्स हिदय-भावत्थो ।
णिक्खेओ वि उवाओ,
जुत्तीए अत्थ-पडिगहणं ।।

ने [illegible] —

जिसके बिन निभता ही नही कभी
कोई भी लोक का चलन।
त्रिभुवन के एक-मात्र गुरुवर, उस
'अनेकान्तवाद' को नमन ।।

जो प्रमाण, नय, निक्षेपो से
करता नही अर्थ का ज्ञान,
उसको सदा अयुक्त-युक्त मे
होता है उलटा प्रतिभान ।।

नाम 'प्रमाण' ज्ञान का दूजा,
'नय' ज्ञाता का हृद्गत आशय।
है 'निक्षेप' उपाय ज्ञान का,
इनसे करो अर्थ का सञ्चय ।।

गुणाणमासओ दव्व,
एगदव्वस्सिया गुणा।
लक्खणं पज्जवाणं तु,
उभओ अस्सिया भवे॥

दव्वं पज्जव–वियुयं,
दव्व-विउत्ता य पज्जवा णत्थि।
उप्पाय-ट्ठिइ-भगा,
हंदि दवियलक्खणं एयं॥

पुरिसम्मि पुरिस-सद्दो,
जम्माई–मरणकाल–पज्जन्तो।
तस्स उ बालाईया,
पज्जव–जोया बहु–वियप्पा॥

पमाण–सुत्तं

गेह्णइ वत्थुसहावं,
अविरुद्धं रूवं जं णाणं।
भणियं खु तं पमाणं,
पच्चक्ख – परोक्ख – भेएहिं॥

द्रव्य गुणो का आश्रय होता,
गुण वे है, जो एक द्रव्य पर आधारित है।
पर्यंव का लक्षण क्या होता ?
वे, जो द्रव्य और गुण दोनो पर आश्रित है ॥

बिना द्रव्य पर्यंव ना होता,
बिन पर्यंव ना होता द्रव्य।
प्रतिपल उत्पाद-व्यय-ध्रुवता,
से लक्षित है होता द्रव्य ॥

पुरुष जन्म से मरणकाल तक,
होता 'पुरुष' शब्द से अभिहित।
पर बाल्यादिक बहुविध पर्यंव,
उसमे होकर होते विगलित ॥

प्रमाण-सूत्र

जो अविरुद्ध और सम्यक्,
वस्तु-स्वभाव का करता ज्ञान।
है प्रत्यक्ष-परोक्ष भेद से,
कहलाता वह ज्ञान – 'प्रमाण' ॥

ससय-विमोह-विब्भम-
विवज्जियं अप्पपरसरूवस्स ।
गहरण सम्मं णाणं,
सायार - मणेय - भेयं तु ॥

तत्थ पंचविह नाणं,
सुय आभिनिबोहियं ।
ओहिनाण तु तइयं,
मणनाण च केवलं ॥

पचेव होंति णाणा,
मदि-सुद-ओहीमणं च केवलयं ।
खय-उव-समिया चउरो,
केवलणाणं हवे खइयं ॥

जीवो अक्खो अत्थ-
व्ववण-भोयणगुणन्निओ जेणं ।
तं पइ वट्टइ नाणं,
जे पच्चक्खं तय तिविहं ॥

सशय-विमोह-विभ्रम रूपो से वर्जित,
जो आत्मरूप-पररूप-ग्रहण होता है।
साकार वही है सम्यग्ज्ञान जगत् मे,
बहुभेदो मे जिसका कि गणन होता है ।।

मति, श्रुत, अवधि, मन पर्यय,
औ' केवल ज्ञान।
पाँच प्रकारो मे विभक्त,
है सम्यग् ज्ञान ।।

मति-श्रुत-अवधि-मन -केवल-
ये मात्र पाँच होते है ज्ञान।
क्षायोपशमिक प्रथम चार हैं,
औ' क्षायिक है केवल-ज्ञान ।।

अर्थ-व्यापन-भोजनगुण से धरता जीव 'अक्ष' अभिधान,
जो कि 'अक्ष के प्रति' है, उसको कहते है 'प्रत्यक्ष' प्रमाण।
अवधि, मन पर्यय औ' केवल—है प्रत्यक्ष त्रिविध ये ज्ञान ।।

अक्खस्स पोग्ग या,
जं दव्विन्दियमरणा परा तेरणं ।
तेहिं तो जं नारण,
परोक्खमिह तमणुमारणं व ।।

होति परोक्खाइं मइ-
सुयाइं जीवस्स परनिमित्ताओ ।
पुव्वोवलद्ध-संबंध-
सरणाओ वाणुमारणं व ।।

णय-सुत्तं

ज णाणीण वियप्पं,
सुयभेयं वत्थु-अस-संगहरणं ।
तं इह णय पउत्त,
णाणी पुण तेण णाणेण ।।

णिच्छय-ववहार-णया,
मूलभेया णयाण सव्वाण ।
णिच्छयसाधनहेउं,
पज्जय-दव्वत्थियं मुणह ।।

पुद्गलकृत द्रव्येन्द्रिय-मन को,
सदा 'अक्ष से पर' तू जान।
उनसे निर्वृत ज्ञान कहाता,
है 'परोक्ष' - जैसे अनुमान॥

जो कि जीव के परनिमित्त है,
है परोक्ष वे मति-श्रुतज्ञान।
पूर्व-प्राप्त सम्बन्ध-स्मरण से भी,
परोक्ष — जैसे अनुमान॥

नय-सूत्र

किसी वस्तु के एक अंश का जिसमे ग्रहण किया जाता है,
श्रुत का भेद और ज्ञानी का वह विकल्प 'नय' कहलाता है।
सच पूछो तो नय का ज्ञानी ही ज्ञानी बन पाता है,
जो इसके विपरीत चले वह अज्ञानी रह जाता है॥

निश्चय औ' व्यवहार-युगल नय,
सभी नयो के मूल जानिये।
द्रव्यार्थिक - पर्यायार्थिक नय,
निश्चय - साधन - हेतु मानिये॥

अक्खस्स पोग्गलकया,

जं दव्विन्दियमणा परा तेण।

तेहिं तो जं नाणं,

परोक्खमिह तमणुमाणं व॥

होंति परोक्खाइं मइ-

सुयाइं जीवस्स परनिमित्ताओ।

पुव्वोवलद्ध-संबंध-

सरणाओ वाणुमाणं व॥

णय-सुत्तं

जं णाणीण वियप्पं,

सुयभेयं वत्थु-अंस-संगहणं।

तं इह णयं पउत्तं,

णाणी पुण तेण णाणेण॥

णिच्छय-ववहार-णया,

मूलभेया णयाण सव्वाणं।

णिच्छयसाधनहेउं,

पज्जय-दव्वत्थियं मुणह॥

पुद्गलकृत द्रव्येन्द्रिय-मन को,
सदा 'अक्ष से पर' तू जान।
उनसे निर्वृत ज्ञान कहाता,
है 'परोक्ष' – जैसे अनुमान ॥

जो कि जीव के परनिमित्त हैं,
है परोक्ष वे मति-श्रुतज्ञान।
पूर्व-प्राप्त सम्बन्ध-स्मरण से भी,
परोक्ष — जैसे अनुमान ॥

नय–सूत्र

किसी वस्तु के एक अंश का जिसमे ग्रहण किया जाता है,
श्रुत का भेद और ज्ञानी का वह विकल्प 'नय' कहलाता है।
सच पूछो तो नय का ज्ञानी ही ज्ञानी बन पाता है,
जो इसके विपरीत चले वह अज्ञानी रह जाता है ॥

निश्चय औ' व्यवहार-युगल नय,
सभी नयो के मूल जानिये।
द्रव्यार्थिक - पर्यायार्थिक नय,
निश्चय - साधन - हेतु मानिये ॥

जो सिय भेदुवयारं,
धम्माणं कुणइ एगवत्थुस्स ।
सो ववहारो भणियो,
विवरीओ णिच्छयो होइ ।।

ववहारोऽभूयत्थो,
भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ ।
भूयत्थमस्सिदो खलु,
सम्माइट्ठी हवइ जीवो ।।

तित्थयर-वयण-संगह-
विसेसपत्थार - मूलवागरणी ।
दव्वट्ठिओ य पज्जव-
णओ, य सेसा वियप्पा सिं ।।

णियय-वयणिज्ज-सच्चा,
सव्वनया परवियालणे मोहा ।
ते उण ण दिट्ठसमओ,
विभयइ सच्चे व अलिए वा ।।

एक वस्तु के धर्मो मे जो,
करता स्याद् - भेद उपचार।
वह 'व्यवहार' कहा जाता है,
'निश्चय' तद्विपरीत विचार।।

'निश्चय-नय' भूतार्थ ख्यात है,
अभूतार्थ 'व्यवहार' कहाता।
निश्चय - नयाश्रयी जीवात्मा,
सम्यग् - दृष्टि - युक्त बन जाता।।

तीर्थंकरो के वचन द्विविध-'सामान्य-विशेष' कहाते है,
उन वचनो के मूल व्याकरण जग मे 'नय' कहलाते है।
द्रव्यार्थिक-पर्यव नामो से होते नय के उभय प्रकार,
शेष सभी इनके विकल्प है, इनके ही होते विस्तार।।

चूँकि सभी नय निज वक्तव्यो मे तो सच्चे ही होते हैं,
किन्तु दूसरे नय-कथनो के यदि विरुद्ध हो, तो मिथ्या है।
विविध नयो पर इसीलिए तो 'अनेकान्त' के ज्ञानी द्रष्टा,
ये सच्चे हैं, वे झूठे है—ऐसा कभी नही कहते है।।

पज्जय गउणं किच्चा,
दव्वं पि य जो हु गिण्हइ लोए।
सो दव्वत्थिय भणिओ,
विवरीओ पज्जयत्थिणओ ॥

नेगम-संगह-ववहार-
उज्जुसुए चेव होइ बोधव्वा।
सद्दे य समभिरूढे,
एवंभूए य मूलनया ॥

पढमति दव्वत्थी,
पज्जयगाही य इयर जे भणिया।
ते चदु अत्थपहाणा,
सद्द-पहाणा हु तिण्णि या ॥

जम्हा ण णएण विणा,
होइ णरस्स सियवाय-पडिवत्ती।
तम्हा सो बोहव्वो,
एयतं हन्तुकामेण ॥

———

पर्यय को कर गौण, द्रव्य को,
सदा लोक मे करे गृहीत।
वह 'द्रव्यार्थिक' नय कहलाता,
'पर्ययार्थि' – नय तद्विपरीत ॥

नैगम, सग्रह, व्यवहार और
ऋजुसूत्र, शब्द सँग समभिरूढ।
अन्तिम है एवभूत – यही
है सात मूल नय – द्विविधरूढ ॥

है प्रथम तीन नय द्रव्यार्थिक,
पर्यायार्थिक है शेष चार।
शब्द – प्रधान है शेष तीन,
अर्थप्रधान है प्रथम चार ॥

नय के बिना किसी को भी,
ना होता स्याद्वाद का ज्ञान।
जो एकान्त मिटाना चाहे,
समझे वह नय का विज्ञान ॥

णियम-णिसेहणसीलो,
णिपादणादो य जो हु खलु सिद्धो।
सो सियसद्दो भणिओ,
जो सावेक्ख पसाहेदि ॥

सत्तेव हुंति भंगा,
पमाण-णय-दुणय-भेदजुत्ता वि।
सिय-सावेक्खं पमाण.
णएण णय-दुणय-णिरवेक्खा ॥

अत्थि त्ति णत्थि दो वि य,
अव्वत्तव्व सिएण सजुत्तं।
अव्वत्तव्वा ते तह,
पमाणभंगी सुणायव्वा ॥

जमणेग-धम्मणो वत्थुणो,
तदंसे च सव्व–पडिवत्ती।
अंध व्व गयावयवे तो,
मिच्छादिट्ठिणो वीसु ॥

जो कि नियम को करे निषिद्ध,
और निपातन से हो सिद्ध।
उसी शब्द को कहते 'स्यात्',
जो सापेक्ष करे हर बात ॥

स्याद्वाद के सात भग ह – सप्रमाण नय-दुर्नय,
स्यात्-शब्द–सापेक्ष भग को हम 'प्रमाण' कहते है।
नय से जो सापेक्ष भग है – वे 'नय' कहलाते है,
दोनो से निरपेक्ष भग है – वे 'दुर्नय' रहते है ॥

'स्यात्' शब्द से युक्त 'अस्ति', फिर 'नास्ति',
और फिर 'अस्ति – नास्ति' है,
'अवक्तव्य', फिर 'अस्ति,' 'नास्ति', फिर
'अस्ति-नास्ति' से युक्त वही पद।
सप्त रूप मे स्याद्वाद की
यह प्रमाण - भगी होती है ॥

अधे जैसे हाथी के विभिन्न अगो को,
मोघ-दृष्टिवश हाथी मान लिया करते है।
वैसे ही अज्ञानी अनेकान्त विषयो के
अशज्ञान को पूरा ज्ञान कहा करते है ॥

जं पुण समत्तपज्जाय-
वत्थुगमग त्ति समुदिया तेणं।
सम्मत्तं चक्खुमश्रो,
सव्व-एयावयवगहणे व्व ॥

पिउ-पुत्त-णत्तु-भव्वय,
भाऊण एग-पुरिस-संबंधो।
ण य सो एगस्स पिय,
त्ति सेसयाणं पिया होइ ॥

सामन्न अह विसेसे,
दव्वे णाणं हवेइ अविरोहो।
साहइ तं सम्मत्तं,
णहु पुण त तस्स विवरीयं ॥

सव्वे समयंति सम्मं,
चेगवसाओ नया विरुद्धा वि।
भिच्च-ववहारिणो इव,
राओदासीण - वसवत्ती ॥

भिन्न अवयवो का समुदय हाथी होता है–
ऐसा सम्यग्ज्ञान दृष्टिमन्तो को होता।
वैसे ही नय-समुदय से वहुधर्म वस्तु के
पर्यायो का पूर्ण ज्ञान सन्तो को होता॥

पिता-पुत्र-पोता-पति-भ्राता के सम्बन्धो का आधार–
एक समय मे एक पुरुष कैसे बन जाता–करो विचार?
एक पुरुष ही भिन्न प्रसगो से अनेक बन जाता है,
पिता एक का, क्या सारे रिश्तो का पिता कहाता है?

जो सामान्य-विशेष नाम के दो धर्मों से युक्त,
द्रव्यमात्र मे होने वाला है अविरोधी ज्ञान।
वही जगत् मे सम्यक्ता का साधक बन सकता है,
जो इसके विपरीत रहे-वह है बाधक अज्ञान॥

स्याद्वाद नृप के समान है, सारे नय उसके दरबारी,
राजा के वश मे विरोध तज, रहते है सम्यग् व्यवहारी।
स्याद्वाद तो उदासीन है, सारे नय सापेक्षाचारी,
स्याद्वाद के वश मे आकर बन जाते सम्यग्-व्यवहारी॥

ज पुण समत्तपज्जाय-
वत्थुगमग त्ति समुदिया तेणं।
सम्मत्तं चक्खुमओ,
सव्व-एयावयवगहणे व्व ॥

पिउ-पुत्त-णत्तु-भव्वय,
भाऊण एग-पुरिस-संबंधो।
ण य सो एगस्स पिय,
त्ति सेसयाणं पिया होइ ॥

सामन्न अह विसेसे,
दव्वे णाणं हवेइ अविरोहो।
साहइ तं सम्मत्त,
णहु पुण त तस्स विवरीयं ॥

सव्वे समयंति सम्मं,
चेगवसाओ नया विरुद्धा वि।
भिच्च-ववहारिणो इव,
राओदासीण - वसवत्ती ॥

भिन्न अवयवो का समुदय हाथी होता है–
ऐसा सम्यग्ज्ञान दृष्टिमन्तो को होता।
वैसे ही नय - समुदय से वहुधर्म वस्तु के
पर्यायो का पूर्ण ज्ञान सन्तो को होता॥

पिता-पुत्र-पोता-पति-भ्राता के सम्वन्धो का आधार–
एक समय मे एक पुरुष कैसे बन जाता–करो विचार?
एक पुरुष ही भिन्न प्रसगो से अनेक बन जाता है,
पिता एक का, क्या सारे रिश्तो का पिता कहाता है?

जो सामान्य - विशेष नाम के दो धर्मों से युक्त,
द्रव्यमात्र मे होने वाला है अविरोधी ज्ञान।
वही जगत् मे सम्यक्ता का साधक बन सकता है,
जो इसके विपरीत रहे - वह है बाधक अज्ञान॥

स्याद्वाद नृप के समान है, सारे नय उसके दरबारी,
राजा के वश मे विरोध तज, रहते है सम्यग् व्यवहारी।
स्याद्वाद तो उदासीन है, सारे नय सापेक्षाचारी,
स्याद्वाद के वश मे आकर बन जाते सम्यग्-व्यवहारी॥

णाणाजीवा णाणा-
कम्म णाणाविह हवे लद्धी।
तम्हा वयण-विवादं,
सग-पर-समएहि वज्जिज्जा।।

संकेज्ज याऽसंकितभाव भिक्खू,
विभज्जवाय च वियागरेज्जा।
भासादुगं धम्मसमुट्ठितेहिं,
वियागरेज्जा समया सुपन्ने।।

णिक्खेव-सुत्तं

जुत्ती-सुजुत्तमग्गे,
जं चउभेएण होइ खलु ठवण।
कज्जे सदि णामादिसु,
त णिक्खेव हवे समए।।

समापण-सुत्तं

एवं से उदाहु अणुत्तरनाणी,
अणुत्तरदंसी अणुत्तर-णाण-दंसणधरे।
अरहा नायपुत्ते भगवं,
वेसालिए वियाहिए त्ति बेमि।।

नाना जीव, कर्म है नाना,
नाना-विधा लब्धियाँ उनकी।
इसीलिए निज-पर समयो से,
वचन - विवाद सदा वर्जित है।।

शकारहित सुप्रज्ञ भिक्षु भी सूत्रार्थो मे,
शकित रहकर स्याद्वाद-मय वचन उचारे।
धर्म - समुत्थित साधुजनो मे समतापूर्वक,
प्रतिपद सत्य और अनुभय भाषा व्यवहारे।।

निक्षेप-सूत्र

नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव मे कभी कार्यवश,
कर देना पदार्थ का युक्तिपूर्ण सस्थापन।
चार-भेदमय वह 'निक्षेप' कहा जाता है,
वह उपाय है जिससे होता अर्थ-विबोधन ।।

समापन-सूत्र

त्रिशला-तनय, अनुत्तरदर्शी और अनुत्तरज्ञानी,
दिव्य अनुत्तर-ज्ञान-दृष्टिधर, अर्हत्, प्रभु, विज्ञानी।
ज्ञातपुत्र श्री महावीर ने यह उपदेश दिया था,
और पवित्र विशालानगरी को कृतकृत्य किया था।।

जिण-वयण-मोसहमिण,
विसयसुह-विरेयणं अमिदभयं।
जर-मरण-वाहि-वरणं,
सखयकरणं ख्वदुक्खाणं॥

जं इच्छसि अप्पणतो,
ज च ण इच्छसि अप्पणतो।
त इच्छ परस्स वि या,
एत्तियगं जिण - सासण॥

जिण - वयणे अणुरत्ता,
जिणवयण जे करेंति भावेण।
अमला असकिलिट्ठा,
ते होति परित्तसंसारी॥

ससमय-परसमयविऊ,
गंभीरो दित्तिम सिवो सोमो।
गुण-सय-कलिओ जुत्तो,
पवयणसारं परिकहेउं॥

विषय–सुखो का परम विरेचन,
जरा-मरण-जनि-व्याधि-हरण है।
सब दु.खो का क्षयकारी यह,
अमृतौषध - सम जिनशासन है।।

जो तुम अपने लिए चाहते,
चाहो वही दूसरो के हित।
इसके परे कभी मत जाओ,
यह है सार-रूप मे जिनमत।।

जो जिन–वचनो के अनुरागी,
तथा भक्तिमय है अनुसारी।
वे निर्मल निष्क्लेश जीव ही,
बनते है परीत ससारी।।

जो गम्भीर, दीप्तिमय, शिव है,
सौम्य, स्व-पर-समयो का ज्ञाता।
युक्त, गुणी है वही सूत्र–
प्रवचन का अधिकारी कहलाता।।

भद्दं मिच्छा-दंसण-
समूह-मइयस्स अमयसारस्स ।
जिणवयणस्स भगवओ,
सविग्ग - सुहाहि - गम्मस्स ।।

जमल्लीणा जीवा,
तरंति ससार - सायरमणतं ।
त सव्व-जीब-सरण,
णदंदु जिणसासण सुइर ।।

लद्धं अलद्धपुव्वं,
जिण-वयण-सुभासिदं अमिदभूदं ।
गहिदो सुग्गइमग्गो,
णाहं मरणस्स बीहेमि ।।

———

जो मिथ्यादर्शन–समूहमय,
तत्त्वरूप है, अमृतसार है।
मुक्तिकाम निष्कलुष हृदय-पट,
मे जलवत् जिसका प्रसार है।
जो आगम पद से प्रसिद्ध है,
रत्नत्रय का सूत्रधार है।
उसका हो कल्याण सदा,
भगवत्स्वरूप जो जिनोद्गार है।।

जिसमे लीन जीव तर जाते,
इस असीम ससार-सिन्धु को।
सब जीवो का शरणरूप वह,
जिन-शासन जग मे नन्दित हो।।

पा लिया है आज पहली बार,
जिनवचन, जो है सुधा-द्रवमय।
सुगति-पथ पर चल पडा हूँ मै,
अब नही मुझको मरण का भय।।

जैन जयतु शासनम्।
जैन-शासन की विजय हो।।

———

[illegible]न-[illegible]न

अहं-ग्रन्थि जो काटे मन की, सच्चा नमन वही होता है।
जो करनी का बीज बन सके, सच्चा कथन वही होता है॥
कोटि-कोटि आँखो के आँसू, जिसके दो नयनों से छलकें।
जिसका मन जग का दरपन हो, सच्चा श्रमण वही होता है॥

वर्धमान ! तुम 'महावीर' थे ।

धर्मायुध से पूर्ण सुसज्जित,
तुम भव-रण के समर-धीर थे ।
वर्धमान !
तुम 'महावीर' थे ।

काम-क्रोध-मद-लोभ-मोह-मात्सर्य सरीखे
तुमने अन्तःशत्रु मिटाये,
तुमने बाह्य वैरियो को भी
निपुण अहिंसा के महास्त्र से
किया पराजित ।
धर्म-विजय का शंखनाद कर
चक्र-प्रवर्तन किया विश्व मे श्रमण-धर्म का ।
वर्धमान तुम महावीर थे ।

जिन-प्रतिपादित श्रमण-धर्म मे,
सच्चा वीर वही होता है—
जो कर्मों से बद्धजनो को
बन्धन-मुक्त किया करता है।
वर्धमान ! तुम महावीर थे।

जिन-प्रतिपादित श्रमण-धर्म मे
सच्चा वीर वही होता है—
जो अति-क्रोध-मान का हन्ता
है अरि-हन्ता।
जो कि लोभ मे महानरक का द्वार निहारे,
जो हिंसा से विरत रहे नित
कर्म-स्रोत का उच्छेदन कर
जो भव-बन्धन काटे सारे।
वर्धमान ! तुम महावीर थे।

जिन-प्रतिपादित श्रमण-धर्म,
सच्चा वीर वही होता है
जिसमे भय की या लज्जा की ग्रंथि नहीं है,
जो शतदल-सा
जलधारा मे रहकर जल से नहीं लिपटता,
ऐसा जो निर्ग्रन्थ और निर्लेप श्रमण है,
जिसकी दृष्टि
सदा समदर्शी ही रहती है,
वही वीर है।

वर्धमान! तुम महावीर थे।

तुमने शुद्ध आचरण का
जो पन्थ दिखाया,

अनगारो, श्रमणो, उपासको का
वह सच्चा मोक्षमार्ग है,
तुमने 'पच महाव्रत' का जो मत्र सिखाया,
वही मुक्ति का महामत्र है।

धर्म-चक्र के तुम्ही प्रवर्तक
महा–मार्ग के तुम्ही प्रदर्शक
और तुम्ही तो
महामत्र के उद्घोषक थे,
तुम्ही केवली थे,
जिनेन्द्र थे,
शान्त–धीर थे।
वर्धमान !
तुम महावीर थे।

———

` से कहो सभी,
भक्ति से सुनो सभी,
हृदय मे गुनो सभी,
तीर्थङ्कर महावीर वर्धमान जय जय।
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र,
जय जिनेन्द्र जय जय॥

*

जिनका नाम कोटि-कोटि मंगलो की खान है,
जिनका रूप दिव्य सूर्य सा प्रकाशमान है।
जिनका धर्म सत्य की उपासना का धर्म है,
जिनका ध्यान ही अखण्ड मुक्ति का विधान है॥
वीतराग, वीतद्वेष, गुणनिधान, जय जय।
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र,
जय जिनेन्द्र जय जय॥

* *

इस धरा की कोख जिनके दिव्य जन्म से फली,
जिनके पुण्य कर्म से ही ज्योति धर्म की जली।
त्याग और विराग-भाव जिनमे मूर्तिमन्त थे,
शालवृक्ष के तले जो बन गये थे केवली ।।
महाश्रमण–त्रिशला के सुखविधान, जय जय।
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र,
जय जिनेन्द्र, जय जय ।।

* * *

'जिन' के पथ मे पुनीत आचरण प्रधान है,
जिनकी दृष्टि ऊँच-नीच पर सदा समान है।
तप-अहिंसा-सयम ही जिनका धर्मचक्र है,
जिनका शब्द-शब्द कोटि-ग्रन्थ से महान है ।।
अनेकान्त दर्शन के शुद्धज्ञान, जय जय।
जय जिनेन्द्र, जय जिनेन्द्र,
जय जिनेन्द्र, जय जय ।।

गाथा-संकेत-सूची

—०—